श्रीयतीन्द्रसूरि-साहित्यमाला के—

प्रकाशित-पुष्प—

तिष्ठामहोत्सव-सियाणा	॥)
नी श्रीप्रेमश्रीजी	।)
त-सुधा (स्तवनानि)	≈)
जनदेव-प्राणप्रतिष्ठा-बागरा	–)
णी श्रीमानश्रीजी	।)
देवगुरुसंगीतमाला	।)
वेक (वैराग्योत्पादक कविता)	॥)
करणचतुष्टय-सार्थ (जीवविचारादि का संग्रह)	१)
तीन्द्रप्रवचन गुजराती द्वितीय भाग	२॥)
विंशति स्थानकपद-तपविधि	।)
गीतपुष्पांजली (उपदेशक पद, स्तवन संग्रह)	।≈)
राइयदेवसियपडिक्कमण-सार्थ	अप्राप्त
पंचप्रतिक्रमण सरलविधि सूत्र सहित	२)
सूरीशविहार-प्रदर्शन (सं० २००९ का)	।≈)
सत्यसमर्थक-प्रश्नोत्तरी	॥)
६ साधुप्रतिक्रमणसूत्र-शब्दार्थ	।)
७ साध्वीव्याख्यान-समीक्षा	॥)
८ देवसियराइयप्रतिक्रमण सविधि (पाकेट साइझ)	॥)
१९ सामायिक लेने के विधिसूत्र सरहस्य (पाकेट)	।)
२० श्रीदेवगुरुदर्शन-विधि (पाकेट)	।)

प्राप्तिस्थान—
श्रीराजेन्द्रप्रवचन कार्यालय
मु० खुडाला, पोस्ट-फालना (मारवाड़)
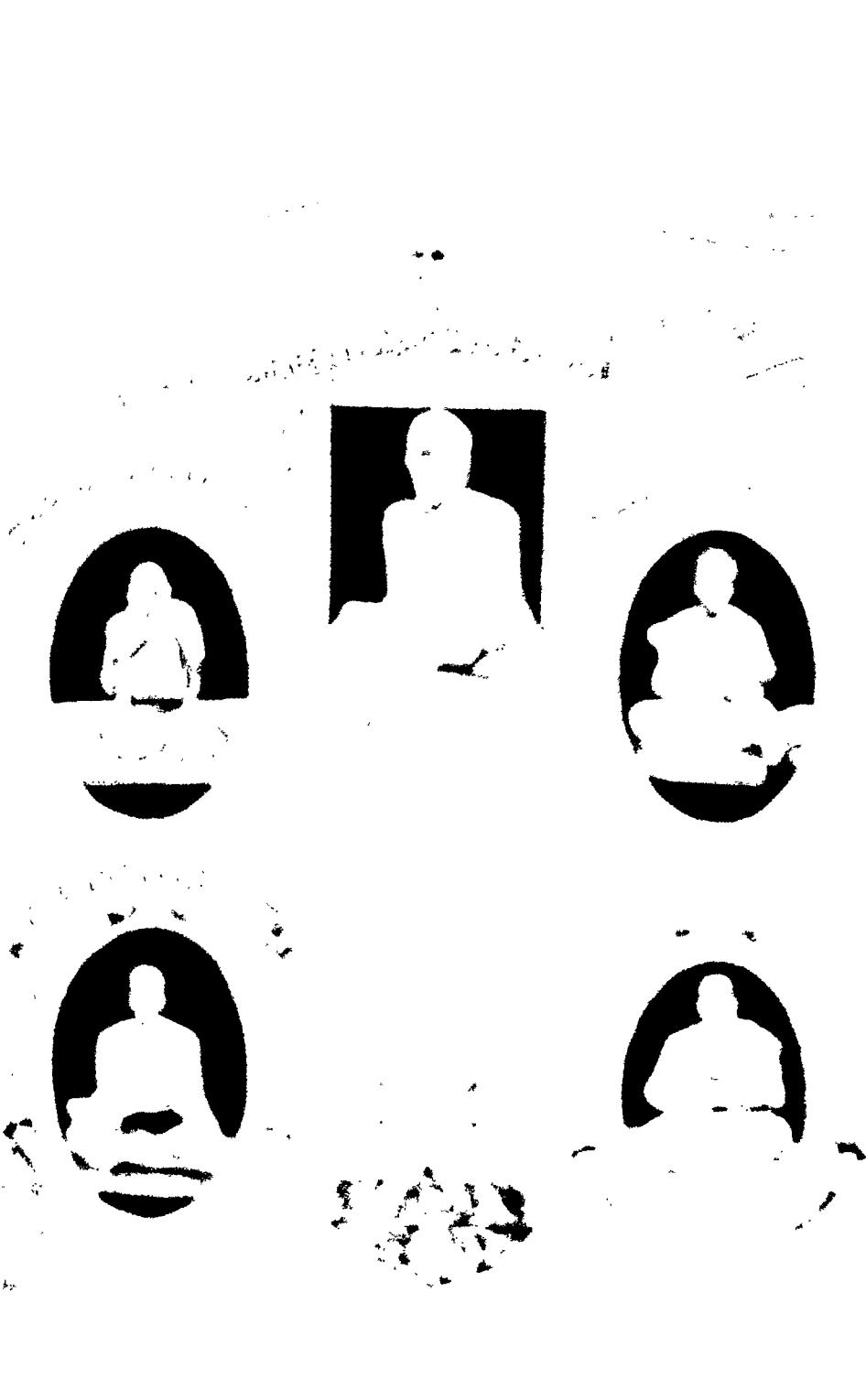
पोस्ट चार्ज व
वी. पी. खर्च
अलग लगेगा।

रोग सदा के लिये भग जाते हैं, यदि रोग न हों तो औषधी के एक वार ही वापरने से शरीर में अनहद बल, वीर्य, रूप, आदि की अभिवृद्धि होकर जिन्दगी पर्यन्त आरोग्यता प्राप्त होती है। राजाने कुंवर को तीसरे वैद्य की औषधी दिलाई–जिससे राजपुत्र अति वलवान् और निरोगी हो गया।

इसी प्रकार प्रतिक्रमण क्रिया आत्मोपार्जित अशुभ पापकर्मों का सर्वनाश करती है और अगर पापकर्म रूपी दोष न हों तो ज्ञान, दर्शन, एवं चारित्र–मय आत्मा को विशेष निर्मल बना देती है–जिससे आत्मा उत्तरोत्तर मोक्ष के महान् सुख प्राप्त करती है। इसके समान संसार में दूसरा कोई सुख नहीं है। अतः साधु हो या साध्वी, श्रावक हो, या श्राविका, समस्त जैनधर्मावलम्बियों के लिये आत्मकल्याणार्थ प्रतिक्रमणक्रिया करना परमावश्यक है।

प्रश्न—प्रतिक्रमणक्रिया प्रमत्त (प्रमादी) साधु, साध्वियों को करना ठीक है परन्तु जो अप्रमत्त हैं उनको इसके करने की क्या जरूरत है?

उत्तर—अप्रमत्त-भाव का काल अन्तर्मुहूर्त (दो घड़ी) मात्र है, वह सदा काल स्थायी नहीं रहता और उसका शेष सारा समय प्रमत्त-भाव में ही व्यतीत होता है। प्रमत्तभाव में सावधानी रखने पर भी सूक्ष्म–छोटा, या बादर–बड़ा अतिचार दोष लग जाना स्वाभाविक है। इसलिये दोषशुद्धि और आत्मशुद्धि के लिये साधु श्रावक तथा श्राविकाओं को प्रतिक्रमण करना अनुचित नहीं है।

प्रश्न—श्राद्धव्रत या महाव्रत धारी हो उसीको प्रतिक्रमण करने की आवश्यकता है, दूसरों को नहीं?

उत्तर—जो लोग श्रद्धा-विहीन हैं, क्रिया करने में शिथिल हैं, प्रमादों के गुलाम हैं और व्यर्थ की बातों में अपने अमूल्य समय का दुरुपयोग करते हैं, उन्हीं लोगों का ऐसा कहना है। आस्तिक श्रद्धालु लोग ऐसा कभी नहीं कह सकते। अगर वे किसी कारण से प्रतिक्रमण-क्रिया न भी कर सकें, तोभी वे उसका उपहास्य या निंदा कभी नहीं करते। धार्मिक क्रियानुष्ठानों की उपहास्य जनक निन्दा करने से महा-पापकर्म का बन्ध होता है जो भव भ्रमण का हेतुभूत है। आत्म-शुद्धि कारक प्रतिक्रमण-क्रिया चाहे श्राद्धव्रत धारी हो, चाहे महाव्रतधारी हो और चाहे अव्रतधारी सभी को निरन्तर करना चाहिये। आगमकार भगवन् फरमाते हैं कि—

अवस्था प्राप्त हुए विना प्रमत्तदशा में ध्यान का आश्रय लेना खाली आडम्बर हैं और अपनी खुद की शिथिलता का पोषक ही है। अतः प्रमत्तभाव में प्रतिक्रमणक्रिया करना अवश्य कार्यकारी है। प्रतिक्रमणसूत्रों के उच्चारण करने और उनको उपयोग पूर्वक श्रवण करने से जैसी चित्त की एकाग्रता रहती है, वैसी ध्यान करने में एकाग्रता नहीं रह सकती। यह तो खाली अपनी शिथिलता का पोषक एक बहाना समझना चाहिये।

प्रश्न—रात्रिक एवं दैवसिक प्रतिक्रमण में आलोचना हो ही जाती है, फिर पाक्षिकादि प्रतिक्रमण क्यों करना चाहिये ?

उत्तर—जिस प्रकार प्रतिदिन स्नान, भज्जन, तेल, फुलेल आदि से शारीरिक शोभा की जाती है, फिर भी पर्वोत्सवादि में सुगन्धी-तेल, उत्तम-वस्त्र एवं आभूषणों से शरीर को विशेष रूप से सजाया जाता है। अथवा—

जह गेहं पइदिवसं पि, सोहियं तह वि पव्वसंधीसु।
सोहिज्जइ सविसेसं, एवं इहयं पि नायव्वं ॥ १ ॥

—जिस प्रकार हर हमेश सन्मार्जनी आदि से घर को साफ-सूफ रक्खा जाता है फिर भी पर्व के दिनों में उसको विशेष रूप से साफ करके ठठारा-मठारा जाता है। उसी प्रकार प्रतिदिन किये गये प्रतिक्रमण में अनाभोगादि कारण से कोई छोटे, या मोटे अतिचार दोष भूल से अथवा विस्मरण से रह गये हों, या भय एवं लज्जा से प्रतिक्रमण गुरु समक्ष न किया हो और गुरुसमक्ष प्रतिक्रमण करने पर भी मन्द परिणाम से अतिचारों की आलोचना यथावत् करना रह गई हो। इत्यादि कारणों से पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में लगे हुए अवशिष्ट अतिचार दोषों की विशेष रूप से आलोचना करके, उनका 'मिच्छामि दुक्कडं' देने के लिये पाक्षिकादि प्रतिक्रमण करलेना भी आवश्यकीय है। अस्तु।

प्रस्तुत पुस्तक में साधु, साध्वी के योग्य स्थण्डिलभूमिप्रमार्जन-मांडलासूत्र १, स्थानकगमनागमनालोचन (ठाणे कमणं) सूत्र २, निशिसंस्तारकालोचन (संथारा उट्टणकी) सूत्र ३, श्रीश्रमण (पगामसज्झाय) सूत्र ४, साधु अतिचारसूत्र ५, अतिचारचिन्तन-गाथासूत्र ६, पाक्षिकसूत्र ७, गोचरी के सैंतालीस दोष ८, तथा दशवैकालिकसूत्र के आदि के चार अध्ययन ९, ये नव सूत्र संग्रहित हैं और ये गणधर एवं श्रुतस्थविर [illegible] रचित [illegible] हैं। प्राथमिक अभ्यासी साधु, साध्वियों को सीखने के लिये इनमें प्रत्येक सूत्र का सार हिन्दी-भाषा में शब्दार्थ आलेखित है जो सब के समझ में आ सकता है, साधु अतिचार [illegible] गुजराती भाषा में है और ये

अवस्था प्राप्त हुए विना प्रमत्तदशा में ध्यान का आश्रय लेना खाली आडम्बर हैं और अपनी खुद की शिथिलता का पोषक ही है। अतः प्रमत्तभाव में प्रतिक्रमणक्रिया करना अवश्य कार्यकारी है। प्रतिक्रमणसूत्रों के उच्चारण करने और उनको उपयोग पूर्वक श्रवण करने से जैसी चित्त की एकाग्रता रहती है, वैसी ध्यान करने में एकाग्रता नहीं रह सकती। यह तो खाली अपनी शिथिलता का पोषक एक बहाना समझना चाहिये।

प्रश्न—रात्रिक एवं दैवसिक प्रतिक्रमण में आलोचना हो ही जाती है, फिर पाक्षिकादि प्रतिक्रमण क्यों करना चाहिये ?

उत्तर—जिस प्रकार प्रतिदिन स्नान, मज्जन, तेल, फुलेल आदि से शारीरिक शोभा की जाती है, फिर भी पर्वोत्सवादि में सुगन्धी-तेल, उत्तम-वस्त्र एवं आभूषणों से शरीर को विशेष रूप से सजाया जाता है। अथवा—

जह गेहं पइदिवसं पि, सोहियं तह वि पव्वसंधीसु।
सोहिज्जइ सविसेसं, एवं इहयं पि नायव्वं ॥ १ ॥

—जिस प्रकार हर हमेश सन्मार्जनी आदि से घर को साफ-सूफ रक्खा जाता है फिर भी पर्व के दिनों में उसको विशेष रूप से साफ करके ठठारा-मठारा जाता है। उसी प्रकार प्रतिदिन किये गये प्रतिक्रमण में अनाभोगादि कारण से कोई छोटे, या मोटे अतिचार दोष भूल से अथवा विस्मरण से रह गये हों, या भय एवं लज्जा से प्रतिक्रमण गुरु समक्ष न किया हो और गुरुसमक्ष प्रतिक्रमण करने पर भी मन्द परिणाम से अतिचारों की आलोचना यथावत् करना रह गई हो। इत्यादि कारणों से पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में लगे हुए अवशिष्ट अतिचार दोषों की विशेष रूप से आलोचना करके, उनका 'मिच्छामि दुक्कडं' देने के लिये पाक्षिकादि प्रतिक्रमण करलेना भी आवश्यकीय है। अस्तु।

प्रस्तुत पुस्तक में साधु, साध्वी के योग्य स्थण्डिलभूमिप्रमार्जन-मांडलासूत्र १, स्थानक्रमणगमनालोचन (ठाणे कमणे) सूत्र २, निशिसंस्तारकालोचन (संथारा उट्टणकी) सूत्र ३, श्रीश्रमण (पगामसज्झाय) सूत्र ४, साधु अतिचारसूत्र ५, अतिचारचिन्तन-गाथासूत्र ६, पाक्षिकसूत्र ७, गोचरी के सेंतालीस दोष ८, तथा दशवैकालिकसूत्र के आदि के चार अध्ययन ९, ये नव सूत्र संग्रहित हैं और ये गणधर एवं श्रुतस्थविर आचार्य रचित माने जाते हैं। प्राथमिक अभ्यासी साधु, साध्वियों को सीखने के लिये इसमें प्रत्येक सूत्र का सरल हिन्दी-भाषा में शब्दार्थ आलेखित है जो सब के समझ में आ सकता है। साधु अतिचार प्राचीन गुजराती भाषा में हैं और वे

विषयानुक्रम-प्रदर्शन ।

विषय पृष्ठ

पडिलेहुं) स्थंडिल भूमि को प्रमार्जन करने के लिये ?, गुरु की आज्ञा मिलने पर (इच्छं) आपका वचन प्रमाण है ऐसा कहना ।

(आघाडे) अनिवार्य संयोगों में (अणहियासे) रुकावट न हो सके तो (आसन्ने) उपासरा, या वसति में संथारा के पास में ही बाजु पर (उच्चारे) बड़ीशंका और (पासवणे) पेशाब-लघुशंका करना, या परठना पड़े १, (आघाडे आसन्ने पासवणे अणहियासे) सहन न होने पर उपाश्रय या संथारा के पास ही कारण से पेशाब करना, परठना पड़े २, (आघाडे मज्झे उच्चारे पासवणे अणहियासे) न रोका जा सकने के कारण उपाश्रय से १०० हाथ के बीच में बड़ीनीत, या लघुनीत करनी, परठनी पड़े ३, (आघाडे मज्झे पासवणे अणहियासे) कारण से सहन न हो सकने पर उपासरा से १०० हाथ के मध्य में पेशाब करना, परठना पड़े ४, (आघाडे दूरे उच्चारे पासवणे अणहियासे) कारण से रुकावट न हो सकने पर उपाश्रय से १०० हाथ दूर बड़ीशंका और लघुशंका निवर्तन करनी पड़े ५, तथा (आघाडे दूरे पासवणे अणहियासे) तात्कालिक कारण से नहीं रुकावट होने पर १०० हाथ छेटे पेशाब परठना, या करना पड़े ६, इन छः कारणों से तद्-योग्य भूमि की प्रतिलेखना करता हूं ।

१–आघाडे आसन्ने उच्चारे पासवणे अहियासे, २–आघाडे आसन्ने पासवणे अहियासे, ३–आघाडे मज्झे उच्चारे पासवणे अहियासे, ४–आघाडे मज्झे पासवणे अहियासे, ५–आघाडे दूरे उच्चारे पासवणे अहियासे, ६–आघाडे दूरे पासवणे अहियासे।

इस पाठ का अर्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है। सिर्फ 'अहियासे' का अर्थ– 'सहन हो सके–रुकावट की जा सके' ऐसा समझना चाहिये ।

१–अणाघाडे आसन्ने उच्चारे पासवणे अणहियासे, २–अणाघाडे आसन्ने पासवणे अणहियासे, ३–अणाघाडे मज्झे उच्चारे पासवणे अणहियासे, ४–अणाघाडे मज्झे पासवणे अणहियासे,

५—अणाघाइं दूरे उद्धाइं पासवणे अणहियासे, ६—अणाघाइं दूरे पासवणे अणहियासे ।

१—अणाघाइं आसन्ने उद्धाइं पासवणे अहियासे, २—अणाघाइं आसन्ने पासवणे अहियासे, ३—अणाघाइं मज्झे उद्धाइं पासवणे अहियासे, ४—अणाघाइं मज्झे पासवणे अहि-यासे, ५—अणाघाइं दूरे उद्धाइं पासवणे अहियासे, ६—अणा-घाइं दूरे पासवणे अहियासे ।

संबंधी पापदोष लाग्यो होय ते सविहुं मन वचन कायाए करी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

शब्दार्थ—(ठाणे कमणे) एक स्थान से दूसरी जगह जाने में, (चंकमणे) विहार आदि करने या इधर उधर घूमने में, (आउत्ते) उपयोग में, (अणाउत्ते) या विना उपयोग में, (हरियकायसंघट्टे) वनस्पति का संघट्टा हुआ हो, (बीयकायसंघट्टे) अन्नादि बीजकणों का संघट्टा हुआ हो, (त्रसकायसंघट्टे) चलने फिरनेवाले जीवों का संघट्टा हुआ हो, (थावरकायसंघट्टे) स्थिर रहनेवाले एकेन्द्रियादि जीवों का संघट्टा हुआ हो, (छप्पइसंघट्टे) जूं, लीख आदि जीवों का संघट्टा हुआ हो (ठाणाओ ठाणं संकामिया) जीवों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रक्खे हों, (देहरे गोचरी वाहिर भूमि मार्गे जावतां आवतां) जिनालय में दर्शनार्थ जाने, गौचरी लाने और स्थंडिलभूमि में जाते आते हुए मार्ग में (एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रियतणा) वनस्पति आदि एकेन्द्रिय, शंख, सीप, कोड़ी कोडा, गिंडोला, अलसिया आदि द्वीन्द्रिय, कंसारी, मकोडा, मांकण, जूआ आदि त्रीन्द्रिय, मक्षिका, मँवरा, भमरी, तीड आदि चतुरिन्द्रिय, तथा मनुष्य, पशु, पंखी आदि पञ्चेन्द्रिय जीवों का (संघट्टपरिताप उपद्रव हुआ) संघट्टा–स्पर्श, तकलीफ, हैरानगति, चमकाना प्रमुख उपद्रव किया हो (मातरियुं अणपूंजे लीधुं अणपूंजी भूमिकाए परठव्युं) पेशाब करने का पात्र विना पूंजे उठाया और विना पूंजी हुई जमीन पर पेशाब डाला या किया हो, (देहरा उपासरा मांही पेसतां निसरतां निस्सीहि आवस्सिही कहेवी विसारी) जिनमन्दिर तथा उपाश्रय में प्रवेश होते 'निस्सीहि' और निकलते हुए 'आवस्सिही' कहने की भूल रही हो, (देवगुरुतणी आशातना हुई) जिनदेव तथा गुरुदेव की आशातना हुई हो और (गोचरीतणा दोष लाग्या) गोचरी लाने सम्बन्धी दोष लगे हों। (अनेरो जे कोई दिवस संबंधी पाप दोष लाग्यो होय) इत्यादि सारे दिन में जो कोई पाप-दोष लगा हो, लगाया हो तो (ते सविहुं मन वचन कायाए करी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं) वह सर्व पाप मन, वचन, काया·

४ श्रीश्रमणसूत्र (पगाम-सज्झाय) ।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरिआणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ! 'एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥'

शब्दार्थ—(अरिहंताणं) अरिहन्त भगवन्तों को (णमो) नमस्कार हो, (सिद्धाणं) सिद्ध भगवन्तों को (णमो) नमस्कार हो, (आयरिआणं) आचार्य भगवन्तों को (णमो) नमस्कार हो, (उवज्झायाणं) उपाध्यायजी महाराजों को (णमो) नमस्कार हो, (लोए सव्वसाहूणं) ढाई-द्वीप प्रमाण मनुष्य-लोक में रहे हुए सर्व साधुओं को (णमो) नमस्कार हो । (एसो) इन (पंचनमुक्कारो) पांचों को किया हुआ नमस्कार (सव्वपावप्पणासणो) समस्त पाप-कर्मों का नाश करनेवाला है और (मंगलाणं च सव्वेसिं) संसार के सभी मंगलों में (पढमं हवइ मंगलं) मुख्य मङ्गल है। १२ गुणों के धारक अरिहन्तों को, ८ गुणों के धारक सिद्धों को, ३६ गुणों के धारक आचार्यों को, २५ गुणों के धारक उपाध्यायों को और २७ गुणों के धारक सर्व साधुओं को त्रिधा भक्ति से किया हुआ नमस्कार ही संसार के प्रचलित सब मंगलों में सर्वोत्तम मङ्गल है ।

करेमि भंते ! सामाइअं, सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ—(भंते) हे भगवन् ! (सामाइअं) सामायिक को (करेमि) मैं करता हूँ, उसमें (सव्वं सावज्जं जोगं) सर्व सावद्ययोग-पाप व्यापार का (पच्चक्खामि) त्याग करता हूं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योग और (तिविहेणं) करना, कराना, अनु-

लोगुत्तमा) १ सर्व अर्हन्त प्रभु लोकोत्तम हैं, (सिद्धा लोगुत्तमा) २ सर्व सिद्ध भगवन्त लोकोत्तम हैं, (साहू लोगुत्तमा) ३ सर्व साधु लोकोत्तम हैं, (केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो) और ४ सर्वज्ञ-प्ररूपित धर्म लोकोत्तम हैं। (चत्तारि सरणं पवज्जामि) चार पदार्थों का शरण ग्रहण करता हूं— (अरिहंते सरणं पवज्जामि) १ अर्हन्त भगवन्तों का शरण अंगीकार करता हूं, (सिद्धे सरणं पवज्जामि) २ सिद्धभगवन्तों का शरण स्वीकार करता हूं, (साहू सरणं पवज्जामि) ३ सुसाधुओं का शरण ग्रहण करता हूं, और (केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि) ४ केवलिभगवन्त के प्ररूपित धर्म का शरण स्वीकार करता हूं। संसार में अरिहंत, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञ-भाषित धर्म महा मंगलकारी, लोकोत्तम और शरण लेने योग्य है, इसलिये इन चारों बातों को मैं हृदय में धारण करता हूं।

इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे देवसिओ अइआरो कओ काइओ वाइओ माणसिओ उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुव्विचिंतिओ अणायारो अणिच्छियव्वो असमणपाउग्गो नाणे दंसणे चरित्ते सुए सामाइए तिण्हं गुत्तीणं चउण्हं कसायाणं पंचण्हं महव्वयाणं छण्हं जीव-निकायाणं सत्तण्हं पिंडेसणाणं अट्ठण्हं पवयणमाऊणं नवण्हं बंभचेरगुत्तीणं दसविहे समणधम्मे समणाणं जोगाणं जं खंडिअं जं विराहिअं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थ—(इच्छामि पडिक्कमिउं) मैं प्रतिक्रमण करने के लिये-अतिचार रूप पाप से निवृत्त होने के वास्ते चाहता हूं-(जो मे देवसिओ) जो मैंने दिवस सम्बन्धी (अइआरो कओ) अतिचार-दोष लगाये हों, वे किस प्रकार के कि-(काइओ) काया सम्बन्धी (वाइओ) वचन सम्बन्धी (माणसिओ) मनः सम्बन्धी (उस्सुत्तो) उत्सूत्र भाषण सम्बन्धी (उम्मग्गो) उन्मार्ग-शास्त्र विरुद्ध मार्ग में जाने सम्बन्धी (अकप्पो) अकल्पनीय क[illegible] सम्बन्धी (अकरणिज्जो) नहीं करने योग्य कार्य

धना रूप पाप से बचने की अभिलाषा रखता हूँ (गमणागमणे पाणक्कमणे) गमनागमन में किसी जीव को दबाने से, (बीयक्कमणे) सचित्त बीजों को दबाने से, (हरियक्कमणे) वनस्पतिकाय को दबाने से, (ओसा) ओस-झाकल, (उत्तिंग) कीड़ियों के बिल-कीड़ीनगरा, (पणग) पंचवर्णी नील-फूल, (दग) कच्चा जल, (मट्टी) सचित्त मिट्टी, (मक्कड़ा) मकड़ी के (संताणा) जालाओं को (संकमणे) कुचलने से, (जे मे जीवा विराहिया) इन जीवों की मैंने विराधना की हो। इस प्रकार कि-(एगिंदिया) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीव, (बेइंदिया) शंख, सीप, कोड़ा कोड़ी, पूरा, अलसिया आदि जीव, (तेइंदिया) चींटी, कुन्थुआ, मकोड़ा, जूं, खटमल आदि जीव, (चउरिंदिया) बिच्छू, मक्खी, भँवरा, ततईया आदि जीव, (पंचिंदिया) तथा साँप, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि जीव, (अभिहया) सामने आते हुए को चोट पहुंचाई हो, (वत्तिया) धूलादि से ढाँके हों, (लेसिया) आपस आपस में, या जमीन पर मसले हों, (संघाइया) एक दूसरे को भेले किये हों, (संघट्टिया) छू कर तकलीफ दी हो, (परियाविया) कष्ट पहुँचाया हो, (किलामिया) मृतप्राय किये हों, (उद्दविया) त्रास दिया हो, या हैरान किये हों (ठाणाओ ठाणं संकामिया) एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर रक्खे हों और (जीवियाओ ववरोविया) जीवन से चुकाये हों, तो (तस्स) वह (दुक्कडं) दुष्कृत-पाप (मि) मेरा (मिच्छा) मिथ्या-निष्फल हो।

नारकजीवों के १४, तिर्यंचजीवों के ४८, मनुष्यों के ३०३ और देवताओं के १९८, इस प्रकार जीवों के कुल भेद ५६३ हैं। इन जीवभेदों को अभिहयादि १० पदों से गुणा करने से ५ हजार ६३० हुए। पांच हजार छः सौ तीस को राग और द्वेष से दुगुना करने पर ११ हजार, २६० हुए। ग्यारह हजार दो सौ साठ को मन, वचन, काया, इन तीन योगों से तिगुना करने से ३३ हजार, ७८० हुए। तेंतीस हजार, सातसौ अस्सी को करना, कराना, अनुमोदना, इन तीन करणों से तिगुना करने पर १ लाख, १ हजार, ३४० हुए। एक लाख, एक हजार तीनसौ चालीस को अतीत, अनागत, वर्तमान, इन तीन काल से तिगुना करने पर ३ लाख, ४ हजार, २० हुए, फिर तीन लाख चार हजार बीस को अरिहंत, सिद्ध, साधु, देव, गुरु,

विप्परिआसिआए) स्त्री को देख कर मन में विकार पैदा होने से तथा (पाणभोअणविप्परिआसिआए) रात्रि में पान, भोजन करने की इच्छा से पैदा हुई आकुल-व्याकुलता से-चंचलता से (जो मे देवसिओ अइयारो कओ) जो कोई मेरे दिवस सम्बन्धी अतिचार दोष लगा हो (तस्स दुक्कडं) वह अतिचारजन्य पाप (मि) मेरे (मिच्छा) मिथ्या-निष्फल हो।

पडिक्कमामि गोअरचरिआए भिक्खायरियाए उग्घाड-कवाडउग्घाडणाए साणावच्छादारासंघट्टणाए मंडीपाहुडियाए वलिपाहुडियाए ठवणापाहुडियाए संकिए सहसागारिए अणे-सणाए पाणभोअणाए बीअभोअणाए हरिअभोअणाए पच्छा-कम्मिआए पुरेकम्मिआए अदिट्ठहडाए दगसंसट्ठहडाए रय-संसट्ठहडाए पारिसाडणिआए पारिट्ठावणिआए ओहासण-भिक्खाए जं उग्गमेणं उप्पायणेसणाए अपरिसुद्धं पडिग्गहिअं परिभुत्तं वा जं न परिट्ठविअं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थ—(गोअरचरिआए) आहार लाने में तथा (भिक्खायरि-आए) भिक्षाचर्या में लगे हुए दोषों की (पडिक्कमामि) मैं आलोचना करता हूं। वे दोष कौन से कि-(उग्घाडकवाडउग्घाडणाए) कुछ ढँके हुए विना पूंजे किवारों को उघाड़ने-खोलने से, (साणावच्छादारासंघट्टणाए) कुत्ता, वछेरा, बालक आदि का संघट्टा करने से, (मंडीपाहुडियाए) ढंकना में, या अन्य पात्र में निकाल कर दिया हुआ आहार लेने से, (बलिपाहुडियाए) दिशा, या अग्नि को बलिदान दिये बाद का आहार ग्रहण करने से, (ठवणा-पाहुडियाए) भिक्षाचरों को देने के निमित्त रक्खे हुए आहार को लेने से, (संकिए) आधाकर्मादि दोषों की शंकावाला आहार लेने से, (सहसागारिए) उतावल से अकल्पनीय आहार लेने से, (अणेसणाए) दोष सहित भिक्षा ग्रहण करने से, (पाणभोअणाए, बीयभोअणाए हरिअभोअणाए) जिस आहारादि को लेने देने में त्रसजा जीवों का, बीजों की और वनस्पति-काय जीवों की विराधना, या संघट्टा होता हो ऐसी भिक्षा लेने से, (पच्छा-

विप्परिआसिआए) स्त्री को देख कर मन में विकार पैदा होने से तथा (पाणभोअणविप्परिआसिआए) रात्रि में पान, भोजन करने की इच्छा से पैदा हुई आकुल-व्याकुलता से-चंचलता से (जो मे देवसिओ अइयारो कओ) जो कोई मेरे दिवस सम्बन्धी अतिचार दोष लगा हो (तस्स दुक्कडं) वह अतिचारजन्य पाप (मि) मेरे (मिच्छा) मिथ्या-निष्फल हो।

पडिक्कमामि गोअरचरिआए भिक्खायरियाए उग्घाड-कवाडउग्घाडणाए साणावच्छादारासंघट्टणाए मंडीपाहुडियाए वलिपाहुडियाए ठवणापाहुडियाए संकिए सहसागारिए अणे-सणाए पाणभोअणाए बीअभोअणाए हरिअभोअणाए पच्छा-कम्मिआए पुरेकम्मिआए अदिट्ठहडाए दगसंसट्ठहडाए रय-संसट्ठहडाए पारिसाडणिआए पारिट्ठावणिआए ओहासण-भिक्खाए जं उग्गमेणं उप्पायणेसणाए अपरिसुद्धं पडिग्गहिअं परिभुत्तं वा जं न परिट्ठविअं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थ—(गोअरचरिआए) आहार लाने में तथा (भिक्खायरि-आए) भिक्षाचर्या में लगे हुए दोषों की (पडिक्कमामि) मैं आलोचना करता हूं। वे दोष कौन से कि-(उग्घाडकवाडउग्घाडणाए) कुछ ढांके हुए बिना पूंजे किवारों को उघाड़ने-खोलने से, (साणावच्छादारासंघट्टणाए) कुत्ता, बछेरा, बालक आदि का संघट्टा करने से, (मंडीपाहुडियाए) ढंकना में, या अन्य पात्र में निकाल कर दिया हुआ आहार लेने से, (बलिपाहुडियाए) दिशा, या अग्नि को बलिदान दिये बाद का आहार ग्रहण करने से, (ठवणा-पाहुडियाए) भिक्षाचरों को देने के निमित्त रक्खे हुए आहार को लेने से, (संकिए) आधाकर्मादि दोषों की शंकावाला आहार लेने से, (सहसागारिए) उतावल से अकल्पनीय आहार लेने से, (अणेसणाए) दोष सहित भिक्षा ग्रहण करने से, (पाणभोअणाए, बीयभोअणाए हरिअभोअणाए) जिस आहारादि को लेने देने में रसजा जीवों की, बीजों की और वनस्पति-काय जीवों की विराधना, या संघट्टा होता हो ऐसी भिक्षा लेने से, (पच्छा-

कम्मियाए पुरेकम्मिआए) भिक्षा ग्रहण किये बाद दायक अपने हाथ आदि और भिक्षा दिये पहले सचित्त जल से अपने हाथ, पैर धोकर भिक्षा देवे ऐसा आहारादि लेने से, (अदिट्ठहडाए दगसंसट्ठहडाए रयसंसट्ठहडाए) विना देखे घर में से लाकर दिये हुए, अथवा सचित्त जल, या रज से स्पर्शित आहारादि ग्रहण करने से, (पारिसाडणिआए) जिसमें अन्नकण, घी, दूध, दही, व्यंजन आदि के छांटे पड़ते हों, ऐसी भिक्षा ग्रहण करने से, (पारिट्ठा-वणिआए) अकल्प्य वस्तु से भरे हुए पात्र को खाली करके उस पात्र में दी जानेवाली भिक्षा के लेने से, (ओहासणभिक्खाए) गृहस्थ के घर बिना देखी हुई कोई भी वस्तु मांग कर लेने से (जं उग्गमेणं उप्पायणेसणाए) कोई वस्तु आधाकर्मादि, धात्री, दूती, आदि उत्पादना और शंकितादि एषणा दोषों से (अपरिसुद्धं परिग्गहिअं) अशुद्ध हुई हो उसको ग्रहण करने, अथवा (परिभुत्तं वा) खाने से-वापरने से, (जं न परिट्ठविअं) परठने योग्य वस्तु को नहीं परठने से, जो मुझ को अतिचार दोष लगे हों (तस्स मिच्छा मि दुक्कडं) वे अतिचार दोषोत्पन्न पाप मेरे मिथ्या-निष्फल हों।

पडिक्कमामि चाउक्कालं सज्झायस्स अकरणयाए, उभओ कालं भंडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए दुप्पडिलेहणाए अप्प-मज्जणाए दुप्पमज्जणाए अइक्कमे वइक्कमे अइयारे अणायारे जो मे देवसिओ अइआरो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थ—(पडिक्कमामि) मैं अतिचारदोषों का प्रतिक्रमण करता हूं। कौन से अतिचार दोष कि-(चाउक्कालं सज्झायस्स अकरणयाए) दिन के प्रथम के दो प्रहर और रात्रि के अन्तिम के दो प्रहर स्वाध्याय करने का काल है। इस काल में स्वाध्याय नहीं करने से, (उभओ कालं) दिन की पहली और अन्तिम पोरसी में (भंडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए) वस्त्र, पात्र, उपधि, आदि उपकरणों की बराबर प्रतिलेखना नहीं करने से, (दुप्पडि-लेहणाए) आगे पीछे, या उपयोग रहित भांडोपकरण की प्रतिलेखना करने से, (अप्पमज्जणाए दुप्पमज्जणाए) दंडासणादि से प्रमार्जन, या विधि

रहित न्यूनाधिक प्रमार्जन करने से, (अइक्कमे वइक्कमे अइयारे, अणायारे) अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार एवं अनाचार में (जो मे देवसिओ अइआरो कओ) जो मेरे दिवस सम्बन्धी अतिचार दोप लगे हों (तस्स मिच्छा मि दुक्कडं) वे अतिचार दोपोत्पन्न मेरे पाप मिथ्या-निष्फल हों।

निमंत्रण करने, या लेने को जाने पर आधाकर्मादि दोषवाले आहारादि लेने की इच्छा होने को 'अतिक्रम' लेने वास्ते जाने को 'व्यतिक्रम' वैसा आहारादि लेने को 'अतिचार' और वैसा आहारादि लाकर वापरने को 'अनाचार दोप' समझना चाहिये।

पडिक्कमामि एगविहे असंजमे। पडिक्कमामि दोहिं बंधणेहिं—रागबंधणेणं दोसबंधणेणं। पडिक्कमामि तिहिं दंडेहिं—मणदंडेणं वयदंडेणं कायदंडेणं। पडिक्कमामि तिहिं गुत्तीहिं—मणगुत्तीए वयगुत्तीए कायगुत्तीए। पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं—मायासल्लेणं नियाणसल्लेणं मिच्छादंसणसल्लेणं। पडिक्कमामि तिहिं गारवेहिं—इड्ढीगारवेणं रसगारवेणं सायागारवेणं।

शब्दार्थ—(पडिक्कमामि एगविहे असंजमे) एक प्रकार के अविरति रूप असंयम में मैंने जो अतिचारदोप लगाया हो उससे मैं पीछा लौटता हूं। (पडिक्कमामि दोहिं बंधणेहिं—रागबंधणेणं दोसबंधणेणं) राग और द्वेप इन दो प्रकार के कर्मबन्ध के कारणों से जो अतिचारदोप लगा हो उससे मैं अलग होता हूं (पडिक्कमामि तिहिं दंडेहिं—मणदंडेणं वयदंडेणं कायदंडेणं) मन, वचन, काय, रूप तीन प्रकार के दण्डों से जो कोई अतिचारदोप हुआ हो, अब मैं उस दोप से दूर होता हूं। (पडिक्कमामि तिहिं गुत्तीहिं—मणगुत्तीए वयगुत्तीए कायगुत्तीए) मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, रूप त्रिविध गुप्तियों को यथावत् नहीं पालने से जो कोई अतिचारदोप लगा हो उससे मैं अलग होता हूं। (पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं—मायासल्लेणं नियाणसल्लेणं मिच्छादंसणसल्लेणं) कपट, निदान और मिथ्यादर्शन रूप त्रिविध शल्यों से जो कोई अतिचारदोप लगा हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं—उस दोप से

पीछा फिरता हूं। (पडिक्कमामि तिहिं गारवेहिं—इड्ढीगारवेणं रसगार-वेणं सायागारवेणं) ऋद्धि, रस और साता इन तीन प्रकार के गारवों से जो कोई अतिचार दोष लगा हो उसको मैं पडिकमता हूं—उससे मैं अपनी आत्मा को हटाता हूं।

मन, वचन, काया को अशुभ प्रवृत्ति तरफ नहीं जाने देना, उन पर सब तरह से कावू रखने को 'गुप्ति' कहते हैं। विपरीत प्ररूपणा करके अपने स्वार्थ को साधने की, लोगों को ठगने की और शिथिलाचारी होकर भी साधुत्व का ढंग दिखाने की अभिलाषा को 'मायाशल्य', मनुष्य और देवादि सम्बन्धी समृद्धि, सन्मान, पूजादि को सुन, या देख कर उसको मिलने का पण करने को 'निदान शल्य' तथा मिथ्यात्ववासित कुगुरु, कुदेव, कुधर्म का चमत्कार देख कर, उनके तरफ जाने, या मानने की चाहना को 'मिथ्यादर्शनशल्य' कहते हैं। समृद्धिमान् होने का अभिमान करना, या उसके रक्षणोपाय की चिन्ता करना 'ऋद्धिगारव,' सुस्वादु, घृत-झर्झरित भोजनादि का घमंड करना, या उसमें आसक्त रहना 'रसगारव' और भोग्य, उपभोग्य सुख सामग्री का अहङ्कार रखना 'सातागारव' कहाता है, जो अशुभ कर्मवन्ध के हेतुभूत है।

पडिक्कमामि तिहिं विराहणाहिं—नाणविराहणाए, दंसण-विराहणाए, चरित्तविराहणाए। पडिक्कमामि चउहिं कसाएहिं-कोहकसाएणं, माणकसाएणं, मायाकसाएणं, लोहकसाएणं। पडिक्कमामि चउहिं सण्णाहिं—आहारसण्णाए, भयसण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग्गहसण्णाए। पडिक्कमामि चउहिं विकहाहिं-इत्थिकहाए, भत्तकहाए, देसकहाए, रायकहाए। पडिक्कमामि चउहिं झाणेहिं-अट्टेणं झाणेणं, रुद्देणं झाणेणं, धम्मेणं झाणेणं, सुक्केणं झाणेणं।

शब्दार्थ—(पडिक्कमामि तिहिं विराहणाहिं) तीन प्रकार की विराधना से लगे हुए अतिचारदोषों की मैं प्रतिक्रमण—आलोचना करता हूं (नाण-

विराहणाए) ज्ञान की विराधना से, (दंसणविराहणाए) सम्यक्त्वधर्म की विराधना से, तथा (चरित्तविराहणाए) चारित्र की विराधना से जो कोई अतिचारदोष लगे हों, मैं उन दोष से अलग होना चाहता हूं (पडिक्कमामि चउहिं कसाएहिं-कोहकसाएणं माणकसाएणं मायाकसाएणं लोहकसाएणं) क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार प्रकार के कषायों से जो अतिचारदोष लगे हों उनसे मेरी आत्मा को अलग करता हूं, तज्जन्य मेरा पाप मिथ्या-निष्फल हो। (पडिक्कमामि चउहिं सण्णाहिं-आहारसण्णाए भयसण्णाए मेहुणसण्णाए परिग्गहसण्णाए) आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा इन चार प्रकार की संज्ञाओं के द्वारा कोई अतिचार दोष लगा हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं। (पडिक्कमामि चउहिं विकहाहिं) चार प्रकार की विकथाओं से लगे हुए अतिचारदोषों से पीछा लौटता हूं-(इत्थिकहाए) स्त्रियों के रूप, लावण्य, हावभाव, चालचलन, प्रेम आदि की प्रशंसा, या निन्दा दर्शक कथा से, (भत्तकहाए) भोजन के स्वाद, या अस्वाद का वर्णन करनेवाली कथा-वार्त्ता से, (देसकहाए) देशों का गुण, अवगुण दरसाने वाली कथा से, (रायकहाए) राज्य की, या राजा की गुण प्रशंसा एवं अवगुण निन्दा दिखानेवाली कथा से जो अतिचार दोष लगे हों वे मेरे मिथ्या हों। (चउहिं झाणेहिं) चार प्रकार के ध्यान-(अट्टेणं झाणेणं) शोक, आक्रन्दन, विलाप, इष्ट वियोग की चिन्ता आदि से होनेवाले आर्तध्यान से, (रुद्देणं झाणेणं) हिंसा, वध, बन्धन, परिताप आदि दुष्ट अध्यवसाय से किये जानेवाले रौद्रध्यान के ध्याने से, (धम्मेणं झाणेणं) जिनेन्द्र प्ररूपित तत्वों की श्रद्धा के निमित्त-भूत धर्मध्यान से और (सुक्केणं झाणेणं) मानसिक अत्यन्त विशुद्ध विचारों से होनेवाले शुक्लध्यान के ध्याने से जो अतिचारदोष लगे हों उनका (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूं, वे अतिचार मैंने किये हों, तो मिथ्या-निष्फल हों।

पडिक्कमामि पंचहिं किरियाहिं- काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए, पारितावणियाए, पाणाइवायकिरिआए। पडिक्कमामि पंचहिं कामगुणेहिं- सद्देणं रूवेणं, रसेणं, गंधेणं।

फासेणं । पडिक्कमामि पंचहिं महव्वएहिं– पाणाइवायाओ वेर-
मणं, मुसावायाओ वेरमणं, अदिन्नादाणाओ वेरमणं, मेहु-
णाओ वेरमणं, परिग्गहाओ वेरमणं । पडिक्कमामि पंचहिं
समिईहिं– इरियासमिईए, भासासमिईए, एसणासमिईए,
आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिईए, उच्चारपासवणखेलजल्लसिं-
घाणपारिट्ठावणिआसमिईए ।

शब्दार्थ—(काइयाए) कायिक गमनागमन सम्बन्धी, (अहिगरणि-
याए) तलवार, शस्त्रादि रूप अधिकरण सम्बन्धी, (पाउसिआए) जीव
एवं अजीव पर द्वेष करने रूप प्राद्वेषिकी, (पारितावणिआए) स्व पर को
संताप पैदा करनेवाली परितापनिका सम्बन्धी, (पाणाइवायकिरियाए)
जीवहिंसा रूप प्राणातिपातिका सम्बन्धी (पंचहिं किरियाहिं) इन पांच
प्रकार की क्रियाओं के करने से जो कोई अतिचारदोष लगे हों उनका
(पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूं। (सद्देणं रूवेणं रसेणं गंधेणं फासेणं)
शब्द, रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श (पंचहिं कामगुणेहिं) इन पांच प्रकार
के कामगुण–इन्द्रिय विषय निषिद्ध हैं, इनके आचरण से जो अतिचारदोष लगे
हों, उनका (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूं। (पाणाइवायाओ
वेरमणं) जीवहिंसा न करना, (मुसावायाओ वेरमणं) असत्य नहीं
बोलना, (अदिन्नादाणाओ वेरमणं) चोरी नहीं करना, (मेहुणाओ वेरमणं)
मैथुन सेवन नहीं करना, और (परिग्गहाओ वेरमणं) परिग्रह के संचय की
मूर्च्छा नहीं रखना, (पंचहिं महव्वएहिं) इन पांच प्रकार के महाव्रतों में
कोई अतिचारदोष लगे हों तो (पडिक्कमामि) मैं उनका प्रतिक्रमण करता
हूं। (इरिआसमिईए) उपयोग और यतना से मार्ग में गमन, आगमन
करना, (भासासमिईए) हितकर, मधुर और सत्य वचन विचार पूर्वक
बोलना, (एसणासमिईए) दोष रहित लेने लायक आहारादि ग्रहण करना,
(आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिईए) घड़ा, पात्र, उपधी, आदि उपकरण
भूमि को देख और पूंज कर यतना से रखना, एवं उठाना, और (उच्चार–

पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणपारिट्ठावणियासमिईए) बड़ी नीति-टट्टी, लघुनीति-पेशाब, श्लेष्म, शरीर का मैल, नासिका का मैल आदि को उपयोग और यतना से सविधि निरवद्य भूमि पर परठना (पंचहिं समिईहिं) इन पांच प्रकार की समितियों के पालन में जो कोई अतिचार दोष लगे हों, उनका मैं (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूं, मेरा वह दोष मिथ्या हो।

पडिक्कमामि छहिं जीवनिकाएहिं– पुढविकाएणं, आउकाएणं, तेउकाएणं, वाउकाएणं, वणस्सइकाएणं, तसकाएणं। पडिक्कमामि छहिं लेसाहिं– किण्हलेसाए, नीललेसाए, काउलेसाए, तेउलेसाए, पउमलेसाए सुक्कलेसाए। पडिक्कमामि सत्तहिं भयट्ठाणेहिं।

शब्दार्थ—(पुढविकाएणं) पृथ्वीकाय, (आउकाएणं) अप्काय, (तेउकाएणं) अग्निकाय, (वाउकाएणं) वायुकाय, (वणस्सइकाएणं) वनस्पतिकाय, और (तसकाएणं) त्रसकाय, (छहिं जीवनिकाएहिं) इन षट्कायिक जीवों को परिताप उपजाने आदि से जो कोई अतिचारदोष लगे हों, उनका (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूं–उन अतिचार दोषों से अपनी आत्मा को अलग करता हूं। (किण्हलेसाए) कृष्णलेश्या, (नीललेसाए) नीललेश्या, (काउलेसाए) कापोतलेश्या, (तेउलेसाए) तेजोलेश्या, (पउमलेसाए) पद्मलेश्या, और (सुक्कलेसाए) शुक्ललेश्या (छहिं लेसाहिं) छः प्रकार की इन लेश्याओं से जो कोई अतिचार दोष लगे हों, उनका मैं (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूं– उनसे अपनी आत्मा को वापिस खींचता हूं।

मानसिक व्यापार से उत्पन्न अध्यवसाय को, कृष्णादि द्रव्य के सम्बन्ध से उत्पन्न आत्मा के परिणाम विशेष को, अथवा आन्तरिक भावों की मलिनता और विशुद्धता की तरतमता को 'लेश्या' कहते हैं। लेश्याओं में प्रथम की तीन अशुभ परिणामों की तथा पिछली तीन शुभ परिणामों की दर्शक हैं। क्रमशः इनके वर्णादि के लिए, अंजन, कौआ, आदि के समान १, भ्रमर, चासपक्षी, कबूतरादि के समान २,

खैरवृक्ष के रस, वृन्ताक पुष्पादि के समान ३, ऊगते सूर्य, प्रवाल, अतसीवृक्षादि के समान ४, सुवर्ण के समान ५, और शंख, चन्द्रमा, गोदूध, समुद्रफेनादि के समान वर्ण हैं। इनका रस क्रमशः १ कटुतुम्बी, निम्बोली, २ पीपर, आदा, मिरचादि, ३ अपक्व बीजोरा, कवीठ, बोर, फनसादि, ४ पक्व आम्ररसादि, ५ दाख, खजूर, महुआ के आसव, और ६ शक्कर, खांड, सांठे जैसा मधुर होता है।

(सत्तहिं भयट्ठाणेहिं) इहलोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्माद् भय, मरण भय, अपयश भय और आजीविका भय, इन सात भयस्थानों के कारण से लगे हुए अतिचारदोष मेरे मिथ्या हों। इन भयस्थानों का क्रमशः अर्थ यह है कि-१ सजातीय मनुष्य का डर, २ विजातीय तिर्यंचादि का डर, ३ चोर प्रमुख का डर, ४ घर में, या रात्रि में सहसा डर पैदा होना, ५ धनादि चले जाने, या दुर्भिक्ष पड़ने का डर, ६ मरण का डर और ७ आत्मप्रशंसा नष्ट होने का डर।

अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं। नवहिं बंभचेरगुत्तीहिं। दसविहे समणधम्मे। एगारसहिं उवासगपडिमाहिं। बारसहिं भिक्खु-पडिमाहिं।

शब्दार्थ—(अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं) जाति, कुल, रूप, बल, लाभ, श्रुत, तप और ऐश्वर्य, इन आठ मदस्थानों से जो अतिचार दोष लगे हों, वे मेरे मिथ्या हों। (नवहिं बंभचेरगुत्तीहिं) १ स्त्री, पशु, पण्डकवाले स्थान में नहीं रहना, २ अकेली स्त्री के साथ आलाप तथा कथा नहीं करना, ३ स्त्री के एक आसन पर नहीं बैठना, अथवा जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो वहाँ दो घड़ी के पहले नहीं बैठना, ४ रागभाव से स्त्रीयों के अङ्गोपाङ्ग नहीं देखना, उनके तरफ टगटगी नहीं लगाना, ५ एक भींत के अन्तर में कहीं स्त्री पुरुष कामोत्तेजक बातें, कामक्रीड़ा और परस्पर हास्य, मश्करी करते हों, उनको नहीं सुनना और वहाँ नहीं रहना, ६ स्त्रियों के साथ पूर्वकाल में कामक्रीडादि की हो उसको याद नहीं करना, ७ कामोत्तेजक एवं उन्मादोत्पादक आहारादि नहीं करना, ८ शरीर शोभा के लिये आभूषण, स्नान, सुगन्धी तेल, उद्वर्त्तनादि करना कराना नहीं, ९ अति झर्झरता स्निग्ध और इच्छा उपरान्त आहार नहीं

करना। ये नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियाँ हैं, ये नववाड़ के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। साधु साध्वियों को इनका पालन भली रीति से करना चाहिये। यदि इनके पालन में कोई अतिचार दोष लगे हों, तो वे मेरे मिथ्या-निष्फल हों।

(दसविहे समणधम्मे) खंति-क्षमा-क्रोधत्याग १, मद्दव-मृदुता-अभिमानत्याग २, अज्जव-सरलता-मायात्याग ३, मुत्ति-निर्लोभता-लोभत्याग ४, तव-बारह प्रकार का तप ५, संजम-सत्तरह प्रकार का संयम ६, सच्चं-सत्य-सर्व प्रकार से सत्य बोलना ७, सोअ-शौच-अदत्त ग्रहण का त्याग ८ आकिंचन-सर्व प्रकार के परिग्रह का त्याग ९, और बंभ-सर्व प्रकार से मैथुन सेवन का त्याग १०, यह दश प्रकार का श्रमण-धर्म है। इसके परिपालन में कोई अतिचार दोष लगे हों, वे मेरे मिथ्या-निष्फल हों।

(एगारसहिं उवासगपडिमाहिं) १-एक महीना तक शंका, कांक्षादि दोष रहित शुद्ध समकित का पालन करना, २-दो महीना तक समकित सहित बारह व्रतों का निरतिचार पालन करना, ३-तीन महिना तक शुद्ध समकित और शुद्ध श्राद्धव्रत पालन सहित दोनों टाइम सामायिक प्रतिक्रमण करना, ४-चार महिना तक पूर्वोक्त नियमों के परिपालन के साथ दो आठम और दो चौदश एवं चार पर्वी निरतिचार पौषध करना, ५-पांच महीना तक पूर्वोक्त नियमों के साथ स्नान का त्याग कर, पौषध में रह कर दिन-रात कायोत्सर्ग ध्यान करना और रात्रि में चोविहार तथा ब्रह्मचर्य पालन करना, ६-छः महीना तक पूर्वोक्त क्रिया के सहित कच्छोट लगाना, और अखंड ब्रह्मचर्य पालन करना, ७-सात महीना तक पूर्वोक्त क्रिया पालने के साथ सचित्त आहार, पानी, वापरने का त्याग करना, ८-आठ महीना तक पूर्वोक्त क्रिया के सहित आरम्भ, समारम्भ करने का त्याग करना, ९-नौ महीना तक पूर्व क्रिया के सहित अपने निमित्त से बनाया गया आहारादि ग्रहण नहीं करना, १०-दश महीना तक पूर्वोक्त नियम पालने के साथ दूसरे किसीसे आरम्भ समारम्भ कराना नहीं, और ११-ग्यारह महीना तक पूर्वोक्त क्रिया के सहित मुंडित-शिर होना, या लोंच कराना, पास में रजोहरण (चरवला) तथा मुखवस्त्रिका रख कर साधु के समान यतना पूर्वक वरतना और अपने गोत्र, या जाति में ही भिक्षावृत्ति से

आहारादि ग्रहण करना। भोजन एवं पानी के लिये काष्ठ–पात्र और मिट्टी का घड़ा रखना चाहिये। ये श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ हैं। इनकी विपरीत प्ररूपणा से, या अश्रद्धा से कोई अतिचार दोष लगा हो, वह अतिचार मेरा मिथ्या हो।

(बारसहिं भिक्खुपडिमाहिं) एक महिना पर्यन्त भोजन में अलेप, शुद्ध आहार, पानी की एक दत्ती १, दो महीना पर्यन्त भोजन में अलेप शुद्ध आहार, पानी की दो दत्ती २, तीन महीना पर्यन्त भोजन में उसी तरह के आहार, पानी की तीन दत्ती ३, चार महीना तक भोजन में अलेप आहार, पानी की चार दत्ती ४, इसी प्रकार पांच, छ तथा सात महीना तक क्रमशः पांच, छः, सात, दत्ती भोजन में ग्रहण करना ५–७, अहोरात्रि–दिनरात पर्यन्त चोविहार सोलह भक्त (सात उपवास) का प्रत्याख्यान लेकर, गाँव के बाहर उत्तानादि आसन से कायोत्सर्ग कर उपसर्ग सहन करना ८, सात अहोरात्रि तक चोविहार सात उपवास (१६ भक्त) कर गाँव के बाहर उत्कटिक, या दंड आसन से कायोत्सर्ग कर उपसर्ग सहना ९, सात अहोरात्रि तक चोविहार सात उपवास (१६ भक्त) कर गाँव के बाह्य प्रदेश में गोदुहिकासन से कायोत्सर्ग में रहना और उपसर्ग सहना १०, चोविहार षष्ठ–भक्त (बेला) करके दो अहोरात्रि गाँव के बाहर कायोत्सर्ग में उपसर्ग सहना ११, और चोविहार अट्ठम (तेला) करके तीन रात्रि ईषत्प्राग्भाराशिला पर एकाग्रदृष्टि, या ऊर्ध्व-दृष्टि रख कर कायोत्सर्ग में उपसर्ग सहना १२। इस प्रकार साधु की बारह प्रतिमाओं पर अश्रद्धा रखने आदि से कोई अतिचार दोष लगा हो, तो वह मेरा अतिचार मिथ्या–निष्फल हो।

तेरसहिं किरिआठाणेहिं। चउद्दसहिं भूअगामेहिं। पन्नरसहिं परमाहम्मिएहिं। सोलसहिं गाहासोलसएहिं। सत्तरसविहे असंजमे। अट्ठारसविहे अबंभे। एगुणवीसाए नायज्झयणेहिं। वीसाए असमाहिट्ठाणेहिं।

शब्दार्थ—(तेरसहिं किरिआठाणेहिं) १–अर्थक्रिया–प्रयोजन के लिये क्रिया करना, २–अनर्थक्रिया–प्रयोजन के बिना क्रिया करना, ३–हिंसाक्रिया–

इसने मेरे स्वजन को मारा, अब मेरे को मारता है, या भविष्यत् में मारेगा ऐसा विचार कर हिंसक प्रवृत्ति करना, ४–अकस्मात्क्रिया–दूसरे को मारते हुए बीच में अन्य को मार डालना, ५–दृष्टिविपर्यासक्रिया–मित्र को दुश्मन और दुश्मन को मित्र मान लेने की प्रवृत्ति करना, ६–मृषाक्रिया–असत्य भाषण, असद् वचन व्यवहार की प्रवृत्ति करना, ७–अदत्तादानक्रिया–चोरी की आजीविका, तस्करवृत्ति करना, ८–आध्यात्मिकीक्रिया–अपना कोई बुरा न चाहता हो, कोई निन्दा न करता हो, तौ भी शंका से उसके विषयक मन में संकल्प विकल्प करना, ९–मानक्रिया–अभिमान से दूसरों को नीचा दिखाने का उपाय सोचना, १०–अमित्रक्रिया–थोड़ा अपराध होने पर भी भारी दण्ड देना, ११–मायाक्रिया–दूसरों को कपट से ठग लेने का उपाय लेना, १२–लोभक्रिया–अत्यन्त तृष्णा से धंधा बढाना, नीच व्यापार करना, और अपने विषय पोषणार्थ अन्य की हिंसा करना, १३–ईर्यापथिकीक्रिया–अयतना और विना उपयोग से गमन, आगमन करना। इन तेरह क्रिया-स्थानों से जो कोई अतिचार दोष लगा हो, वह मेरा मिथ्या–निष्फल हो।

(चउद्दसहिं भूअगामेहिं) सूक्ष्म–एकेन्द्रिय १, बादर–एकेन्द्रिय २, द्वीन्द्रिय ३, त्रीन्द्रिय ४, चतुरिन्द्रिय ५, संज्ञी–पञ्चेन्द्रिय ६, और असंज्ञी–पञ्चेन्द्रिय ७, इन सातों के पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता मिल कर चौदह 'भूत–ग्राम' कहलाते हैं। इन प्राणी समुदाय के आश्रित जो कोई अतिचार दोष लगे हों, वे मेरे मिथ्या हों। इन जीवों की हिंसा, परिताप, उपजाने से अतिचार दोष लगता है।

(पन्नरसहिं परमाहम्मिएहिं) १ अम्ब, २ अम्बरीष, ३ श्याम, ४ शबल, ५ रुद्र, ६ उपरुद्र, ७ काल, ८ महाकाल, ९ असिपत्र, १० धनुष, ११ कुम्भ, १२ वालुक, १३ वैतरणी, १४, खरस्वर, और १५ महाघोष। ये पन्द्रह जाति के भवनपति की असुरनिकाय के देव हैं, जो नारक जीवों को विविध प्रकार से महादुःख देते हैं। ये परमाधार्मिक देव अपने अपने नामानुसार नारक जीवों को क्रमशः–१ आकाश में ऊंचे ले जा कर नीचे पटकना है, २ भट्ठी में पकाने के लिये उनके टुकड़े टुकड़े करना है, ३ नारकों के हृदय और आन्तों का भेदन करना है, ४ उनको काटना है, ५ तीखे तीखे भालाओं में

परोता है, ६ उनके अंगोपांगों को तोड़ता है, ७ तलवार जैसे तीक्ष्ण पत्रोंवाले असिवनों को बनाता है, और नारकों को उन झाड़ों पर चढ़ाता है, ८ धनुष से अर्धचन्द्राकार बाण छोड़ कर बींधता है, ९ नारकों को कुम्भीपाक में पकाता है, १० नारकों के मांस को खांड कर उन्हें ही खिलाता है, ११ नारकों को अग्निकुंड में डाल कर सेकता है, १२ अग्नि-सी उकलती और रुधिर एवं पीव से भरी हुई वैतरणीनदी में डालता है, १३ नारकों को अति सन्तप्त रेती में डाल कर भूंजता है, १४ भुंजते हुए भगनेवाले नारकों को अट्टहास्य की आवाज कर रोकता है, और १५ वज्रकंटक जैसे शाल्मलीवृक्ष पर नारकों को चढ़ा करके खींचता है, इत्यादि। ये देव अनेक प्रकार की वेदना नारकों को देते हैं। इसी रौद्रध्यान से परमाधामी देव भी मर कर नराकृति अण्डगोलिक में उत्पन्न होते हैं। इन देवों के विषय में शंकादि अतिचार दोष लगे हों, तो वे मेरे मिथ्या हों।

(सोलसहिं गाहासोलसएहिं) १ स्वसमय-परसमयज्ञ, २ वैतालिक, ३ उपसर्गपरिज्ञा, ४ स्त्रीपरिज्ञा, ५ नरकविभक्ति, ६ वीरस्तव, ७ कुशील-भाषाज्ञ, ८ वीतरजा, ९ धर्ममार्ग, १० समाधि, ११ समवसरण, १२ आहतहा, १३ ग्रन्थाध्ययन, १४ संयममार्ग, १५ मार्गाध्ययन, और १६ गाथाध्ययन, ये श्रीसूत्रकृताङ्गजी सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन हैं। इनकी असत् प्ररूपणादि से कोई अतिचार दोष लगा हो, वह मेरा मिथ्या-निष्फल हो।

(सतरसविहे असंजमे) पृथ्वीकाय असंयम १, अप्काय असंयम २, तेजस्काय असंयम ३, वायुकाय असंयम ४, वनस्पतिकाय असंयम ५, द्वीन्द्रिय असंयम ६, त्रीन्द्रिय असंयम ७, चतुरिन्द्रियअसंयम ८, पञ्चेन्द्रिय-असंयम, ९, अजीव असंयम १०, प्रेक्षा असंयम ११, उपेक्षा असंयम १२, प्रमार्जना असंयम १३, पारिष्ठापनिका असंयम १४, मन असंयम १५, वचन असंयम १६, और काय असंयम १७, यह सत्तरह प्रकार का असंयम है। मन, वचन, काया रूप योगों की अनुपयोग और अयतना से प्रवृत्ति करने को 'असंयम' कहते हैं। वह प्रवृत्ति १७ प्रकार से होती है। संयम प्रवृत्ति में यदि कोई भूल हो जाय तो अतिचार दोष लगता है। इनमें कोई अतिचार दोष लगा हो, तो वह मेरा मिथ्या हो।

(अट्ठारसविहे अबंभे) देवी और औदारिक-मनुष्य, मनुष्यणी, तिर्यंच, तिर्यंचनी इन द्विविध मैथुन सेवन को मन, वचन, काया से गुणा करने से ६, इनको करना, कराना, अनुमोदना रूप तीन करणों के साथ तीन गुणा करने से अब्रह्म के कुल अठारह भेद होते हैं। इनमें कोई अतिचार दोष लगा हो, वह मेरा मिथ्या-निष्फल हो।

(एगुणवीसाए नायज्झयणेहिं) १ उत्क्षिप्त, २ संघाड, ३ अंड, ४ कूर्म, ५ सेलक, ६ तुम्ब, ७ रोहिणी, ८ मल्लिनाथ, ९ माकन्दी, १० चन्द्रमा, ११ दावद्रव, १२ उदक, १३ मण्डूक, १४ तेतलीपुत्र, १५ नन्दीफल, १६ अपरकङ्का, १७ आकीर्णक, १८ सुसुमार, और १९ पुण्डरीक, ये ज्ञाताधर्म-कथाङ्गजी सूत्र के उन्नीस अध्ययन हैं। इनकी विपरीत प्ररूपणा से कोई अतिचार दोष लगा हो, तो तज्जन्य पाप मेरा मिथ्या-निष्फल हो।

(वीसाए असमाहिट्ठाणेहिं) १ उतावल से चलना, २ विना पूंजी भूमि पर बैठना, ३ अच्छी तरह से नहीं पूंजे हुए स्थान पर बैठना, ४ कोई प्राहुणा साधु उपाश्रय में आवे, उसके साथ झगड़ा करना, ५ आसन, पीठ, फलक, आदि अधिक अपनी निश्रा में रखना, ६ बड़ेरों के सामने बोलना, ७ ज्ञानवृद्ध, तपवृद्ध, और वयवृद्ध का उपघात करना, या उनको मरणान्त कष्ट देना, ८ प्राणीयों का उपघात करना, ९ बार बार कोप करना, १० सदा क्रोधमुखी रहना, थोभड़ा चढ़ाये रखना, ११ पीछे से अवर्णवाद बोलना, या पृष्ठी मांस खादक होना, १२ विना निश्चय हुए बार बार निश्चित भाषा बोलना, १३ प्राचीन कलह जो भूले जा चुके हैं उनकी उदीरणा करना-फिर से उनको जाग्रत करना, १४ अकाल वेला में स्वाध्याय करना, १५ स्थण्डिलभूमि से आकर पैरों का प्रमार्जन नहीं करना, अथवा रजलिप्त हाथ से भिक्षा ग्रहण करना और अशुद्ध भूमि पर सोना, बैठना, १६ विकाल वेला में ऊंचे स्वर से बोलना, या गृहस्थ भाषा का व्यवहार करना, १७ प्रत्येक व्यक्ति के साथ कलह करना, १८ गच्छ में भेद खड़ा करना, १९ अति भोजन करना, या सुबह से सन्ध्या तक खाते ही रहना, या देवद्रव्यादि का भक्षण करना कराना, और २० एषणासमिति का भङ्ग करना, ये बीस असमाधि-स्थान हैं। साधु

साध्वियों को इनका परित्याग कर देना चाहिये। इनके कारण कोई अतिचार दोष लगा हो, वह मेरा मिथ्या हो।

इगवीसाए सबलेहिं। बावीसाए परीसहेहिं। तेवीसाए सूअगडज्झयणेहिं। चउवीसाए देवेहिं। पणवीसाए भावणाहिं। छवीसाए दसाकप्पववहाराणं उद्देसणकालेणं सत्तावीसाए अणगारगुणेहिं।

शब्दार्थ—(इगवीसाए सबलेहिं) १ हस्तकर्म करना, २ अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार सहित सालम्बन मैथुन सेवना, ३ रात्रि का ग्रहण किया दिन में और दिन का लाया रात्रि में भोजन करना, ४ आधाकर्म दोष वाला आहार वापरना, अथवा हमेशां तीन चार वार खाना, ५ राजपिण्ड ग्रहण करना, ६ वेचाता लाया हुआ पिण्ड ग्रहण करना, ७ उधारा लाया हुआ आहारादि लेना, ८ सामने लाया हुआ पिण्ड लेना, ९ किसीसे छीन कर दिया हुआ आहारादि लेना, १० त्याग की हुई वस्तु लेना, ११ छः-छः महीना में एक गच्छ से दूसरे गच्छ में जाना, १२ एक महीना में तीन वार नदी, या जलाशय को उतरना, १३ एक महीना में तीन वार मायास्थान सेवन करना, १४ जान कर पृथ्व्यादि जीवों की हिंसा करना, कराना, १५ जान कर झूठ बोलना, १६ जान कर अदत्त वस्तु लेना, १७ अशुद्ध पृथ्वी पर आसन लगाना, गमनागमन करना, १८ अत्यंत आसक्ति से मूला, जमीकन्द और फल खाना, १९ वर्ष एक में दश वार उदकलेप-सचित्तपानी का संघट्टा लगाना, २० वर्ष एक में दश वार कपट-स्थान सेवन करना, २१ सचित्त जल से भींजे हुए हाथवालेने दिया हुआ आहारादि लेना, ये २१ प्रकार के शवल दोष संयमधर्म को मलिन करते हैं। अतः साधु, साध्वियों को इन दोषों का त्याग कर देना चाहिये। अगर इनका, या इनमें से किसीका अतिक्रमण होने से अतिचार दोष लगा हो, तो वह मेरा मिथ्या-निष्फल हो।

(बावीसाए परीसहेहिं) १ क्षुधा, २ पिपासा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंश-मशक, ६ अचेल, ७ अरति-रति, ८ स्त्री, ९ चर्या, १० निषद्या, ११

शय्या, १२ आक्रोश, १३ वध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृणस्पर्श, १८ मल, १९ सत्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान और २२ सम्यक्त्व, ये बावीस परीषह हैं। साधु, साध्वियों को ये परीसह अवश्य सहन न होने से कोई अतिचार दोष लगे हों, तो वे मेरे मिथ्या-निष्फल हों।

(तेवीसाए सूअगडज्झयणेहिं) सूत्रकृताङ्गजी सूत्र के १६ अध्ययन के नाम पूर्व में लिखे गये हैं, उनमें पुण्डरीक १, क्रियास्थान २, आहारपरिज्ञा ३, प्रत्याख्यानक्रिया ४, अनगारमार्ग ५, आर्द्रकुमार ६, नान्दलक ७, ये सात अध्ययन और मिला देने से २३ अध्ययन हुए। इन २३ अध्ययनों की विरुद्ध प्ररूपणा आदि से जो कोई अतिचार दोष लगे हों, मेरे वे मिथ्या-निष्फल हों।

(चउवीसाए देवेहिं) भवनपति १०, व्यन्तर ८, ज्योतिष्क ५ और वैमानिक १, इस प्रकार चोवीस प्रकार के देवों की आशातना, विरुद्ध प्ररूपणा आदि से, अथवा मतान्तर से वर्तमान चोवीसी के चोवीस अरिहन्त देवों की अश्रद्धा, अभक्ति और आशातना आदि से जो कोई अतिचार दोष लगे हों मेरे वे दोष मिथ्या-निष्फल हों।

(पणवीसाए भावणाहिं) १ देख कर मार्ग में गमन करना, २ वस्तु के आदान, प्रदान, निक्षेपण का उपयोग रखना, ३ निर्दोष आहारादि लेना, ४ मन को दुष्ट न रखना और वचन को दुष्टप्रवृत्ति में प्रवृत्त नहीं होने देना, प्रथम महाव्रत की ये पांच भावनाएँ हैं। हास्य का त्याग १, लोभ का त्याग २, भय का त्याग ३, क्रोध का त्याग ४, और असत्य वचन का त्याग ५, द्वितीय महाव्रत की ये पांच भावनाएँ हैं। १ वसति-दाता के पास स्वयं अवग्रह की याचना करना, २ दूसरे साधु को तृणादि देना पड़े तो वसति-दाता की आज्ञा से देना, ३ शयन, आसन आदि उपाश्रयदाता की आज्ञा से वापरना, ४ गुरु, या वड़िल की आज्ञा से आहारादि लाना तथा वापरना और ५ आगन्तुक मुनियों के लिये वसति में ठहरने की आज्ञा वसतिदाता से पहले ही माँग रखना, तिसरे महाव्रत की ये पांच भावनाएँ हैं। १ प्रमाण से अधिक, या स्निग्ध आहार नहीं करना, २ शरीर की विभूषा नहीं करना, ३ स्त्रियों के अङ्गोपाङ्ग नहीं निरखना, अथवा पूर्वावस्था में भोगी हुई कामक्रीड़ाओं को याद नहीं करना, ४ पशु, पण्डक तथा स्त्रीवाली वसति में नहीं रहना, और

५ स्त्रियों से वार्तालाप नहीं करना, या उनके सम्बन्धी कथा नहीं कहना, चौथे महाव्रत की ये पांच भावनाएँ हैं। १-५ शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श सम्बन्धी मनोज्ञ विषयों को देख कर राग, तथा अमनोज्ञ विषयों को निरख कर द्वेष नहीं करना, पांचवें महाव्रत की ये पांच भावनाएँ हैं। इस प्रकार पांचों महाव्रतों की पच्चीस भावना समझना चाहिये।

मतान्तर से अनित्यादि १२, मैत्री आदि ४, और मित्रादि दृष्टि ८, निःशंकिनी १, एवं ये २५ भावनाएँ भी हैं जो मानसिक अध्यवसायों को विशुद्ध बनानेवाली और कर्मनिर्जरा की हेतुभूत हैं। इन पूर्वोक्त भावनाओं के यथावत् पालन न करने, इनमें अश्रद्धा, प्रमाद रखने से कोई अतिचार दोष लगा हो तो मेरा वह दोष मिथ्या-निष्फल हो।

(छब्वीसाए दसाकप्पववहाराणं उद्देसणकालेणं) दशाश्रुतस्कन्धजी सूत्र के १० जीतकल्पसूत्र के ६ और व्यवहारसूत्र के १० अध्ययन, ये सब मिल कर २६ अध्ययनों के छब्वीस उद्देशनकाल की विरुद्ध प्ररूपणा आदि से कोई अतिचार दोष लगा हो तो मेरा वह दोष मिथ्या-निष्फल हो।

(सत्तावीसाए अणगारगुणेहिं) महाव्रत ५, रात्रिभोजनत्याग १, पांचों इन्द्रियों का जय ५, भावशुद्धि १, प्रत्युपेक्षादिकरणशुद्धि १, क्षमा १, लोभनिग्रह १, अशुभ मन का निरोध १, अशुभ वचन का निरोध १, अशुभ काय प्रवृत्ति का निरोध १, षट्कायरक्षा ६, संयमयोग रक्षा १, शीतादि परीषह सहन १, और मरणान्तोपसर्गसहन १, इस प्रकार साधु के सत्तावीस गुण हैं। इन गुणों के पालन में प्रमाद आदि से कोई अतिचार दोष लगे हों, मेरे वे दोष मिथ्या-निष्फल हों।

अट्ठावीसाए आयारप्पकप्पेहिं। इगुणतीसाए पावसुअप्पसंगेहिं। तीसाए मोहणीयट्ठाणेहिं। इगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं। बत्तीसाए जोगसंगहेहिं। तित्तीसाए आसायणाए।

शब्दार्थ—(अट्ठावीसाए आयारप्पकप्पेहिं) १ शस्त्रपरिज्ञा, २ लोकविजय, ३ शीतोष्णीय, ४ सम्यक्त्व, ५ लोकसार, ६ धूताध्ययन, ७ महापरिज्ञा,

८ विमोक्ष, ९ उपधानश्रुत, १० पिण्डैषणा, ११ शय्या, १२ ईर्या, १३ भाषा, १४ वस्त्रैषणा, १५ पात्रैषणा, १६ अवग्रहप्रतिमा, १७ सप्तैकसप्तिका, १८ ठाणसप्तिका, १९ निसीहिसप्तैकका, २० उच्चार-पासवणसप्तैकका, २१ रूपसप्तैकका, २२ शब्दसप्तैकका, २३ अन्योन्यक्रिया, २४ भावनाध्ययन, २५ विमुक्ति, २६ उपघात, २७ अनुद्घात, २८ आरुहणा, श्रीआचाराङ्गजी सूत्र के २५ अध्ययन और निशीथसूत्र के अन्तिम ३ अध्ययन, कुल अठाईस आचार-प्रकल्प के जानना। इनकी विरुद्ध प्ररूपणा आदि से जो अतिचार दोष लगे हों, मेरे वे दोष मिथ्या-निष्फल हों।

(एगुणतीसाए पावसुअप्पसंगेहिं) दिव्य-व्यन्तरदेवों के अट्टहासादि १, उत्पात-रुधिरवृष्टि आदि २, अन्तरिक्ष-ग्रहभेद, उल्कापात आदि ३, भौम-भूकम्पादि ४, अङ्ग-अङ्गावयव स्फुरणादि ५, स्वर-कंठ, नासिका, पक्षी के स्वर आदि ६, व्यञ्जन-शारीरिक मसा, तिल, भ्रमरी आदि ७, और लक्षण-रेखा, लंछनादि ८, आठ प्रकार के निमित्तांग, इन पर सूत्र, वृत्ति और वार्त्तिक ये तीन तीन होने से २४ तथा गन्धर्व २५, नाट्य २६, वास्तुविद्या २७, धनुर्वेद २८, और आयुर्विद्या २९ ये उन्तीस पापशास्त्र हैं जो पापकर्म बन्ध के कारण हैं। इनकी प्ररूपणा करने से जो अतिचार दोष लगे हों, मेरे वे दोष मिथ्या-निष्फल हों।

(तीसाए मोहणीयट्ठाणेहिं) १ किसी मनुष्य को पानी में डाल कर मारना, २ मुख आदि को बन्द कर मारना, ३ मस्तक पर कठिन बन्ध बाँध कर मारना, ४ मस्तक, या शरीर को मयूरबन्ध से बाँध कर मारना, ५ राजा की हत्या करना, ६ अनेक लोगों के आधारभूत व्यक्ति को मारना, ७ व्याधिग्रस्त मनुष्य की औषधादि सेवा नहीं करना, ८ साधु को ज्ञानादि मार्ग से भ्रष्ट करना, ९ तीर्थङ्करों का अवर्णवाद बोलना, १० आचार्य, उपाध्याय आदि की निन्दा करना, ११ आहारादि से आचार्य आदि की भक्ति नहीं करना, १२ ज्योतिष, अधिकरण आदि की शिक्षा देना, १३ तीर्थ-भेद कर विराधना करना, १४ वशीकरणादि प्रयोग करना, कराना, १५ दीक्षित हो कामाभिलाषा रखना, १६ मैं बहुश्रुत या तपस्वी हूं ऐसा बार बार कहना, या मौन रहने का ढोल दिखलाना, १७ नगर गाँव, घर आदि को जलाना, १८ स्वयं अकृत्य सेवन

कर उसका दूसरों पर आरोप लगाना, १९ छल-कपट करना, २० मानसिक अध्यवसाय दुष्ट रखना, २१ सदा कलह-झगड़े करना, २२ विश्वासघात करना, २३ विश्वासु मित्र आदि की स्त्री से व्यभिचार सेवना, २४ कुमर न होने पर भी अपने को कुमर घोषित करना, २५ व्यभिचारी होकर भी अपने को ब्रह्मचारी जाहिर करना, २६ जिसके आश्रय से धनसंपत्ति, आवरू, प्राप्त हुई हो उसीके धनादि हड़पने का लोभ रखना, २७ उपकारी को कष्ट में डालने का उपाय लेना, २८ सेनापति, मंत्री, आदि का घात करना, २९ देवादि दर्शन न होने पर भी देवों को देखता हूं कहना, और ३० देवों का अवर्णवाद बोलना। निकृष्ट कर्मवन्ध के कारणभूत ये तीस मोहनीय स्थान हैं, साधु, साध्वी इनका सर्वदा त्याग कर दें। इनके कारण यदि कोई अतिचार दोष लगा हो तो वह दोष मेरा मिथ्या-निष्फल हो।

(इगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं) संस्थान ५, वर्ण ५, गन्ध २, रस ५, स्पर्श ८, और वेद ३ इनका सर्वथा अभाव होने से २८ गुण, कायरहित २९, संगरहित ३० और जन्मरहित ३१, ये सिद्धभगवान् के इकतीस गुण हैं। दूसरे प्रकार से ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ९, वेदनीय २, दर्शनमोहनीय १, चारित्र-मोहनीय १, शुभनाम-अशुभनाम २, ऊँच-नीच गोत्र २, अन्तराय ५, और आयुष्कर्म ४, इन आठ कर्मों की ३१ प्रकृतियों के क्षय होने से सिद्धभगवान् के ३१ गुन भी जानना। अथवा इनमें मोहनीय की २६, नामकर्म की १०१ एवं १२७ प्रकृति इकतीस में मिला देने से आठों कर्म की १५८ प्रकृतियाँ होती हैं जिनका सिद्ध भगवान् के अत्यन्त अभाव हो चुका है। सिद्ध के गुणों की विपरीत प्ररूपणा करने आदि से जो कोई अतिचार दोष लगा हो, वह दोष मेरा मिथ्या-निष्फल हो।

(बत्तीसाए जोगसंगहेहिं) १ आचार्य के पास साफ दिल से आलो-चना-प्रायश्चित्त लेना, २ आचार्यने जो प्रायश्चित्त दिया उसको किसी के सामने प्रकाशित नहीं करना, ३ आपत्ति आने पर भी धर्म में दृढ़ रहना, ४ इस लोक और परलोक के फल की कामना रहित क्रियानुष्ठान करना, ५ ग्रहण और आसेवना इन दोनों शिक्षाओं का सम्यक् रूप से पालन करना, ६ शरीर को जलादि से धोकर साफ नहीं करना, ७ तपस्या कर दूसरों के

सामने उसको जाहिर नहीं करना, ८ लोभ का त्याग करना, ९ परीषहादिक को जीतना, १० कुटिलता का त्याग करना-सरल स्वभाव रखना, ११ अतिचारदोष रहित संयमव्रत को पालन करना, १२ समकित को शुद्ध रखना, १३ चित्त को समाधि में रखना, १४ आचारों का पालन करने में सावधान रहना, १५ विनयप्रतिपत्ति में तत्पर रहना, १६ धृति-मनको स्थिर रखना, कायर नहीं होना, १७ संवेग परायण रहना, १८ माया रहित व्यवहार रखना, १९ सर्व विधि विधान बराबर करना, २० संवरभाव में वर्त्तना, २१ आत्मदोषों का त्याग करना, २२ सर्व काम से विरक्त रहना, २३ मूलगुण में दोष नहीं लगाना, २४ उत्तरगुण संबन्धी प्रत्याख्यान करना, २५ द्रव्य और भाव से कायोत्सर्ग करना, २६ प्रमादका त्याग करना, २७ दश प्रकार की सामाचारी का पालन करना, २८ आर्त्त, रौद्र ध्यान का त्याग और धर्मध्यान, शुक्लध्यान का आचरण करना, २९ मारणान्तिक कष्टों को सहना, ३० ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा का पालन करना, ३१ दोष लगने पर उसका प्रायश्चित्त लेना और ३२ मरण के समय आराधना करना, ये बत्तीस योगसंग्रह कहाते हैं। इनके पालन में असावधानी से कोई अतिचारदोष लगा हो, तो वह दोष मेरा मिथ्या-निष्फल हो।

(तित्तीसाए आसायणाए) १ अकारण गुरु के आगे चलना, २ गुरु के बराबरी से बगल में चलना, ३ गुरु से अड़ते हुए पीछे पीछे चलना, ४ गुरु के पास ही आगे खड़े रहना, ५ गुरु की बराबरी से खड़े रहना, ६ गुरु के पीछे अड़ते हुए खड़े रहना, ७ गुरु के आगे बैठना, ८ गुरु के बगल में नजीक बैठना, ९ गुरु के पीछे अड़ते हुए बैठना, १० गुरु के पहले आहारादि वापरना, ११ गुरु के पहले इरियावहि करना, १२ रात्रि में गुरु बुलावे तो उत्तर नहीं देना, १३ गुरु के पहले ही दूसरों से बातें करने लगना, १४ आहारादि लाकर दूसरे साधु के पास आलोचना कर, फिर गुरु के पास आलोचना करना, १५ आहारादि दूसरे साधुओं को दिखा कर फिर गुरु को दिखाना, १६ आहार आदि वापरने के समय प्रथम दूसरे साधु या साधुओं को बुला कर, फिर गुरु को बुलाना, १७ गुरु की आज्ञा लिये बिना अपनी इच्छा से साधुओं को स्निग्ध और मिष्टान्नादि लाकर देना, १८ गुरु को तुच्छ, विरस आहारादि देना

और खुद सरसाहार वापरना, १९ गुरु बुलावे तब सुन कर भी उत्तर नहीं देना, २० कर्कश एवं ऊँचे स्वर से गुरु से बोलना, २१ गुरु बोलावे तब अपने आसन पर बैठे बैठे जवाब देना, २२ गुरु के बुलाने पर क्या कहते हो ?, क्या काम है ? ऐसा बोलना, २३ गुरु किसी कार्य को करने का आदेश देवे तो आप ही क्यों नहीं कर लेते ? ऐसा कहना २४ 'तुम समर्थ एवं छोटी दीक्षा-वाले हो,' अतः 'वृद्ध, बाल, ग्लान साधु की वैयावृत्य करने का लाभ लो' गुरु का ऐसा कथन सुन कर कहना कि आप खुद वैयावृत्य क्यों नहीं करते ? अथवा अपने दूसरे शिष्यों से क्यों नहीं करवा लेते ?, २५ गुरु कोई धर्म-कथा कहें उससे नाराज होना, २६ गुरु सूत्रादि का अर्थ बतावें तो कहना कि आप को अर्थ ठीक नहीं आता, अर्थ तो मेरे कहे मुताबिक ही ठीक है, २७ गुरु कथा कहते हों तो 'ठहरो मैं कहता हूं' बोल कर कथा भंग करना, २८ सभा रस पूर्वक धर्मकथा सुन रही हो, बीच में 'गोचरी का समय हो गया है' बोल कर सभा का भंग करना, २९ श्रोताओं की सभा उठने पर अपनी हुशीयारी दिखाने को उसी कथा या उपदेश को विस्तार से कहना, ३० गुरु के शय्या, आसन आदि से पग लगाना, ३१ गुरु के शय्या या आसन पर बैठना, ३२ गुरु से ऊँचे आसन पर बैठना, और ३३ गुरु के समान आसन बिछा कर बैठना। इस प्रकार गुरु की तेंतीस आशातनाएँ हैं। असावधानी, विनय-हीनता और प्रमाद से इनमें का कोई अतिचार दोष लगा हो, तो मेरा वह दोष मिथ्या-निष्फल हो।

अरिहंताणं आसायणाए, सिद्धाणं आसायणाए, आयरिआणं आसायणाए, उवज्झायाणं आसायणाए, साहूणं आसायणाए, साहुणीणं आसायणाए, सावयाणं आसायणाए, सावियाणं आसायणाए, देवाणं आसायणाए, देवीणं आसायणाए, इहलोगस्स आसायणाए, परलोगस्स आसायणाए, केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए, सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स आसायणाए, सव्वपाणभूअजीवसत्ताणं आसायणाए.

कालस्स आसायणाए, सुअस्स आसायणाए, सुयदेवयाए आसायणाए, वायणारिअस्स आसायणाए, जं वाइद्धं, वच्चामेलिअं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, घोसहीणं, जोगहीणं, सुट्ठुदिन्नं, दुट्ठुपडिच्छिअं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए सज्झाइअं, सज्झाए न सज्झाइअं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

(अरिहंताणं आसायणाए) तीर्थंकर हैं ही नहीं, अगर वे हों तो अपनी संसार अवस्था में जानते हुए भी पापजनक भोग क्यों भोगते हैं और साध्वावस्था में देवादि रचित समवसरण में किसलिये बैठते हैं ? इत्यादि अरिहन्तों की आशातना है १, (सिद्धाणं आसायणाए) सिद्धजीव हैं ही नहीं, यदि हैं तो वे चेष्टा रहित होने से किस काम के हैं ?, इत्यादि सिद्धभगवन्तों की आशातना है २, (आयरिआणं आसायणाए) ये आचार्य छोटे कुल या नीच कुल के हैं, अवस्था में छोटे, गरीब और दुर्बुद्धि, या श्रुत-विहीन हैं, इत्यादि आचार्यों की आशातना है ३, (उवज्झायाणं आसायणाए) इसमें कुछ लक्षण नहीं है, जाति का नीच है, अज्ञ और क्रोधी या मायाचारी है, इत्यादि उपाध्यायों की आशातना है ४, (साहूणं आसायणाए) सिद्धान्तों को ये जानते नहीं, क्रोधावेशी, डरपोक, खाली ढोंग बतानेवाले और लोगों को ठगनेवाले धूर्त हैं, इत्यादि साधुओं की आशातना है ५, (साहुणीणं आसायणाए) ये झगड़ाखोर हैं, वस्त्र पात्र की लालचु हैं और ब्रह्मचर्य में भी पतित हैं, इत्यादि साध्वियों की आशातना है ६, (सावयाणं आसायणाए) ये जैनधर्मी होने पर भी दीक्षा नहीं लेते, इनमें श्रावकत्व नहीं है, इत्यादि श्रावकों की आशातना है ७, (सावियाणं आसायणाए) ये श्राविकाएँ नहीं है, धर्माचार से पतित हैं, इत्यादि श्राविकाओं की आशातना है ८, (देवाणं आसायणाए) देव सदा कामभोगों में आसक्त हैं, व्रत रहित, प्रत्या-

१ यहाँ देव देवी की थुई न कहने की आशातना नहीं बतलाई, अतः उनकी थुई कहना नहीं चाहिये, यदि उनकी थुई कही जाय तो यह भी उनकी आशातना ही है ।

ध्यान हीन और चेष्टा रहित हैं, ये समर्थ होकर भी जैनतीर्थों की अवनति नहीं हटा सकते, इत्यादि देवों की आशातना है ९, (देवीणं आसायणाए) देवीयाँ भी विषयासक्त हैं, रातदिन उसीकी कामना चाहती हैं और कुछ भला भी नहीं कर सकतीं, इत्यादि देवियों की आशातना है १०, (इहलोगस्स आसायणाए) इस लोक सम्बन्धी खोटी प्ररूपणा, या उसके विषय में भूगोल की खोटी कल्पना करना, इत्यादि इस लोक की आशातना है ११, (परलोगस्स आसायणाए) परलोकगत नारक, देवादि की असत्प्ररूपणा करना, जो कुछ दृष्ट है वही लोक है, परलोक है ही नहीं, इत्यादि परलोक की आशातना है १२, (केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए) सर्वज्ञ प्ररूपित आगम प्राकृतमय तुच्छ भाषा में है वह किसने रचा इसका कोई प्रमाण नहीं, उसमें बताया धर्म भी फल प्रदाता नहीं है, इत्यादि केवलिप्रज्ञप्तधर्म की आशातना है १३, (सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स आसायणाए) देव, मनुष्य और असुर सहित ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक् लोक को न मान कर, सात द्वीप तथा सात समुद्र पर्यन्त ही लोक की प्ररूपणा करना, इत्यादि लोक की आशातना है १४, (सव्वपाणभूअजीवसत्ताणं आसायणाए) समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्वों की खोटी प्ररूपणा करना, या इनमें जीवसत्ता नहीं मानना, यह सर्वप्राणादि की आशातना है १५, (कालस्स आसायणाए) काल, या अकाल कुछ नहीं है, यह तो केवल विश्व की परिणति है, इत्यादि काल की आशातना है १६, (सुअस्स आसायणाए) सूत्रों की विपरीत प्ररूपणा और अपने स्वार्थ साधने के लिये उत्सूत्र भाषण करना, इत्यादि श्रुत की आशातना है १७, (सुअदेवयाए आसायणाए) श्रुतदेवता है ही नहीं, अगर है तो वह शासन की उन्नति क्यों नहीं करता, इत्यादि श्रुतदेवता की आशातना है १८, और (वायणायरिअस्स आसायणाए) ये दूसरों के सुख दुःख को नहीं जानते और उनसे बार-बार वन्दना कराते हैं, इत्यादि वाचनाचार्य की आशातना है १९, (जं वाइद्धं) विपरीत अक्षर, या उतावल से बोलना, इत्यादि व्यविद्धाक्षर आशातना है २०, (वच्चामेलिअं) विना सम्बन्ध, अथवा घाल-मेल कर उच्चारण करना, यह व्यत्याम्रेडित आशातना है २१, (हीणक्खरं) कम, या छोड़ते हुए अक्षर

बोलना, यह हीनाक्षराशातना है २२, (अच्चक्खरं) अधिक अक्षर मिला कर बोलना, यह अत्यक्षराशातना है २३, (पयहीणं) कम पद का उच्चारण करना, यह पदहीनाशातना है २४ (विणयहीणं) उचित विनय किये विना बोलना, या पढ़ना, यह विनयहीनाशातना है २५, (घोसहीणं) उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित दोष सहित बोलना, यह घोषहीनाशातना है २६, (जोगहीणं) योगोद्वहन किये विना सूत्र बांचना या भणना, यह योगहीनाशातना है २७, (सुट्ठुदिन्नं) याद न किया जा शके उतना अधिक पाठ ग्रहण करना, यह सुष्ठुदत्ताशातना है २८, (दुट्ठुपडिच्छिअं) अविनय, या दुष्टता से पाठ लेना, यह दुष्टुप्रतीच्छिताशातना है २९, (अकाले कओ सज्झाओ) अकालवेला में सूत्र की स्वाध्याय करना यह अकालाशातना है ३०, (काले न कओ सज्झाओ) कालवेला में स्वाध्याय नहीं करना, यह कालाशातना है ३१, (असज्झाइए सज्झाइअं) असज्झाय में पठन, पाठनादि स्वाध्याय करना, यह अस्वाध्यायिकाशातना है ३२ और (सज्झाए न सज्झाइअं) स्वाध्याय समय में स्वाध्याय नहीं करना, यह स्वाध्यायिकाशातना है ३३, इनमें पिछली २० से ३३ तक की आशातनाएँ सूत्र वाचना, पढ़ना-सीखना सम्बन्धी हैं। (तस्स मिच्छा मि दुक्कडं) इन अशातनाओं के कारण कोई अतिचार दोष लगा हो, वह मेरा तज्जन्य पाप मिथ्या-निष्फल हो। उस पाप को छोड़ने की यथाशक्ति खप करूंगा।

१ उल्कापात-ताराओं का टूटना, या पूंछड़िया ताराओं का उदय होना, २ दिग्दाह-किसी भी दिशा में भारी दाह का प्रकाश दीखना, ३ गर्जित-ग्रहों की गति, या दूसरे किसी कारण से गर्जन का कड़कड़ाट होना, ४ विद्युत-जोरों से बिजली का चमकना, या बिजली पड़ना, ५ निर्घात-व्यन्तरादि देवकृत महा ध्वनि होना, ६ यूपक-सन्ध्या और चन्द्रप्रभा का संमिश्रण होना, या चन्द्रावृत से शुदि १, २, ३, अथवा मतान्तर से २, ३, ४ तिथि का भान न रहना, ७ यक्षादीप्त-बिजलीसा प्रकाश, या अग्निदीपन होना, ८ धूमिका-धूँधल, या कोहर से अन्धकार छा जाना, ९ महिका-तुषार, या बर्फ वर्षना जो गर्भमासों में पड़ता है, और १० रजोवृष्टि-धूलि से आकाश छा जाना एवं उसका बरसाद होना।

इनमें उल्कापात, दिग्दाह, यूपक और यक्षादिप्त की एक एक प्रहर की, गर्जित

की दो प्रहर की, तथा निर्घात की एक अहोरात्रि की, और धूमिका, महिका, रजो-वृष्टि जितने समय तक पड़े, या रहे उतने काल तक असज्झाय समझना। इसी प्रकार चैत्री तथा आसोजी की ओलियों के दिन की और चोमासी, चतुर्दशी के मध्याह्न से प्रतिपदा तक ढाई ढाई दिन की असज्झाय–अस्वाध्याय जानना चाहिये।

औदारिकशरीरी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के ६० हाथ तक में हाड, मांस, रुधिर पड़ा हो तो ३ प्रहर, यदि वे १०० हाथ तक में मनुष्य के हों, अथवा वे चूहे आदि के हों तो एक एक अहोरात्रि की असज्झाय लगती है। अगर भूमि धोकर शुद्ध कर दी हो तो असज्झाय नहीं लगती। पैशाब, विष्ठावाले अशुचिस्थान में, १०० हाथ तक श्मशान–भूमि में मनुष्य का मृतशरीर पड़ा हो उस स्थान में, और चन्द्रसूर्य का ग्रहण जब तक रहे तब तक असज्झाय जानना। राजा, मंत्री, सेनापति, ग्रामनायक आदि का मृत्यु की एक दिन की, राजयुद्ध चलता रहे उतने दिन तक की, और उपाश्रयादि के समीप १०० हाथ तक में मुरदा पड़ा हो वह न उठाया जाय तब तक असज्झाय समझना[1]।

णमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाइ महावीरपज्जवसाणाणं इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं, केवलियं पडिपुन्नं नेआउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं, सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमविसंधिं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं।

शब्दार्थ—(उसभाइ महावीरपज्जवसाणाणं) भगवान् श्रीऋषभदेवजी से लेकर श्रीमहावीरस्वामीजी पर्यन्त (चउवीसाए तित्थयराणं) चौवीस तीर्थंकर भगवन्तों को (णमो) शुद्धान्तः करण से नमस्कार हो (इणमेव निग्गंथं पावयणं) यही निर्ग्रन्थ सम्बन्धी द्वादशाङ्गी रूप प्रवचन–शास्त्र (सच्चं) सत्पुरुषों और साधु–साध्वियों के लिये आत्मकल्याण कारक है, (अणुत्तरं) इस प्रवचन जैसा दूसरा कोई प्रवचन नहीं है, यह (केवलियं) सर्वज्ञ प्ररूपित अद्वितीय है, (पडिपुन्नं) आत्मकल्याण–कर गुणों से पूर्ण भरा हुआ है, (नेआउयं) न्याय से युक्त है, (संसुद्धं) सर्व प्रकार के दोषों से

[1] यहाँ पर असज्झाय–अस्वाध्याय का संक्षिप्त स्वरूप लिखा है, विशेष जानने के जिज्ञासु को आवश्यकादि सूत्र टीकाओं से जानना चाहिये।

रहित है, (सल्लगत्तणं) सांसारिक शल्यों का नाश करनेवाला है (सिद्धिमग्गं) हितकारक मार्ग को प्राप्त करानेवाला है, (मुत्तिमग्गं) कर्मक्षय रूप मोक्षमार्ग का दर्शक है, (निज्जाणमग्गं) सिद्धशिला पर लेजाने का मुख्य साधन है, (निव्वाणमग्गं) आत्यन्तिक सुख प्राप्त करने का मार्ग है, (अवितहं) सर्व सत्य से पूर्ण है, (अविसंधि) महाविदेहादि क्षेत्रों में विच्छेद रहित है–शाश्वत है, (सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं) और समस्त दुःखों का अन्त करानेवाला है, इस प्रकार के प्रवचन की मैं श्रद्धा रखता हूं ।

इत्थं ठिआ जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। तं धम्मं सद्दहामि पत्तिआमि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि । तं धम्मं सद्दहंतो पत्तिअंतो रोअंतो फासंतो पालिंतो अणुपालिंतो तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए असंजमं परिआणामि, संजमं उवसंपज्जामि, अबंभं परिआणामि, बंभं उवसंपज्जामि ।

शब्दार्थ—(इत्थं ठिआ जीवा) इस निर्ग्रन्थ सम्बन्धी प्रवचन में स्थिर रहे हुए जीव (सिज्झंति) अणिमा[1], महिमा[2], गरिमा[3], लघिमा[4], प्राप्ति[5], प्राकाम्य[6], ईशित्व[7], वशित्व[8] ये आठ सिद्धियाँ पाते हैं, (बुज्झंति) केवलज्ञान पाते हैं (मुचंति) कर्म से छुटकारा पाते हैं, (परिनिव्वायंति) सर्व प्रकार से सुखी होते हैं और (सव्वदुक्खाणमंतं करेंति) सर्व दुःखों का अन्त–विनाश करते हैं । (तं धम्मं सद्दहामि) उस निर्ग्रन्थ–प्रवचन रूप धर्म

---

१ इतना छोटा शरीर बना लेने की शक्ति जो सूची के छिद्र में से भी निकल जाय। २ इतना मोटा शरीर बना लेने की शक्ति जिसके सामने सुमेरु पर्वत भी छोटा दीखने लगे। ३ पवन से भी हलका शरीर बना लेने की शक्ति। ४ इन्द्रादि देव भी जिसको न उठा सकें इतना वजनदार शरीर बना लेने की शक्ति। ५ शरीर को इतना लम्बा बना लेने की शक्ति, जिससे सुमेरु पर्वत की चोटी पर खड़े हो कर अंगुली के अग्र भाग से ग्रहादि का स्पर्श किया जा सके। ६ पानी पर स्थलभूमि के और भूमि पर पानी के समान डुबकी मारने एवं चलने की शक्ति। ७ चक्रवर्ती तथा इन्द्र की ऋद्धि प्रकट कर लेने की शक्ति, और ८ हिंसक जन्तुओं, तथा दुश्मनों को भी वश कर लेने की शक्ति।

को मैं सद्दहता हूं-हृदय से उस पर विश्वास रखता हूं, (पत्तिआमि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि) अंगीकार करता हूं, आत्मा में रुचाता हूं, उस की सेवा करता हूं, उसका पालन और हमेशा परिपालन करता हूं। (तं धम्मं सद्दहंतो पत्तिअंतो रोअंतो फासंतो पालिंतो अणुपालिंतो) उस धर्म की श्रद्धा रखते, उसको अंगीकार करते, हृदय में रुचाते, स्पर्शना-सेवा करते, यथावत् पालन करते और निरन्तर पालन करते हुए (तस्स) उस (धम्मस्स केव०) केवलिभाषित धर्म की (आराहणाए) आराधना करने के वास्ते (अब्भुट्ठिओमि) उद्यमवंत हुआ हूं, (विरओमि विराहणाए) और विराधना करने से निवृत्त हुआ हूं, असंजमं परिआणामि) ज्ञपरिज्ञा से असंयम को भलीभाँति जान कर उसका प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग करता हूं और (संजमं उवसंपज्जामि) संयम धर्म को अंगीकार करता हूं, तथा (अबंभं परिआणामि) अब्रह्म-मैथुन भाव का त्याग और (बंभं उवसंपज्जामि) ब्रह्मचर्य को अंगीकार करता हूं।

अकप्पं परिआणामि, कप्पं उवसंपज्जामि। अन्नाणं परिआणामि नाणं उवसंपज्जामि, अकिरिअं परिआणामि किरिअं उवसंपज्जामि। मिच्छत्तं परिआणामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि। अबोहिं परिआणामि, बोहिं उवसंपज्जामि। अमग्गं परिआणामि, मग्गं उवसंपज्जामि। जं संभरामि। जं च न संभरामि, जं पडिक्कमामि, जं च न पडिक्कमामि, तस्स सव्वस्स देवसिअस्स[१] अइआरस्स पडिक्कमामि।

शब्दार्थ—(अकप्पं परिआणामि) नहीं लेने लायक आहार आदि का त्याग करता हूं, (कप्पं उवसंपज्जामि) लेने योग्य आहारादि को अंगीकार करता हूं, (अन्नाणं परिआणामि) अज्ञान का त्याग और (नाणं उवसंपज्जामि) ज्ञान को स्वीकार करता हूं, (अकिरिअं परिआणामि) अक्रिया-नास्तिकवाद का त्याग और (किरिअं उवसंपज्जामि) क्रिया-सम्यक्वाद को अंगीकार करता हूं, (मिच्छत्तं परिआ-

१ पाक्षिकादि प्रतिक्रमण में पक्खिअस्स, चउमासिअस्स, संवच्छरिअस्स कहना।

णामि) मिथ्यात्व का त्याग, और (सम्मत्तं उवसंपज्जामि) समकित-धर्म-आत्मीय विश्वास को अंगीकार करता हूं, (अबोहिं परिआणामि) मिथ्या कार्यों का त्याग, और (बोहिं उवसंपज्जामि) सम्यक्त्व सम्बन्धी कार्यों को अंगीकार करता हूं, (अमग्गं परिआणामि) मिथ्या मार्ग का त्याग, और (मग्गं उवसंपज्जामि) सम्यक् मार्ग का आचरण करता हूं, (जं संभरामि) उपयोग से जो कुछ स्मरण में है, (जं च न संभरामि) अनुपयोगादि से जो स्मरण में नहीं है, तथा (जं पडिक्कमामि) जाने हुए का प्रतिक्रमण करता हूं-उसका त्याग करता हूं, (जं च न पडिक्कमामि) जो कुछ अजान में है-स्मरण में नहीं है उसका प्रतिक्रमण नहीं कर सकता। (तस्स सव्वस्स) उन सर्व (देवसिअस्स अइआरस्स) दिवस सम्बन्धी अतिचारों का (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूं-उन अतिचार दोषों से मेरी आत्मा को दूर हटाता हूँ, वे मेरे सब दोष मिथ्या-निष्फल हों।

समणो हं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मो अनियाणो दिट्ठिसंपन्नो मायामोसविवज्जिओ। "अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु, पन्नरससु कम्मभूमिसु। जावंत केवि साहू, रयहरणगुच्छपडिग्गहधारा ॥ १ ॥ पंचमहव्वयधारा, अट्ठारस-सहस्ससीलंगधारा। अक्खयायारचरित्ता, ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि ॥ २ ॥"

शब्दार्थ—(समणो हं) मैं श्रमण हूँ, (संजय-विरय) संयमधारी और विरतिवन्त हूं तथा (पडिहयपच्चक्खायपावकम्मो) अतीत काल में किये हुए दोषों की निन्दा से और भविष्य में नहीं होने की प्रतिज्ञा से पाप-कर्म का नाश करनेवाला मैं हूँ, (अनियाणो दिट्ठिसंपन्नो) निदान से रहित तथा सम्यग्दर्शन के सहित और (मायामोसविवज्जिओ) माया-मृषावाद से रहित हुआ हूँ, ऐसा हो (अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु, पन्नरससु कम्मभूमीसु) जम्बू, धातकीखण्ड तथा पुष्करार्ध इन ढाई द्वीपों के पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह, इन पन्द्रह क्षेत्रों में (रयहरणगुच्छ-पडिग्गहधारा) रजोहरण, गोच्छक, प्रतिग्रह-पात्रादि उपकरण, (पंच

महव्वयधारा) प्राणातिपात विरमण आदि पांच महाव्रतों, (अट्ठारससहस्स-सीलंगधारा) अठारह हजार भांगा सहित शीलाङ्ग और (अक्खयायार-चरित्ता) विशुद्ध आचार रूप संयम के धारण करनेवाले (जावंत के वि साहू) जितने भी साधु हैं (ते सव्वे) उन सर्व साधुओं को (सिरसा मणसा) मस्तक-काया तथा मन से (मत्थएण वंदामि) मस्तक नमा कर मैं वन्दन करता हूं ।

१ पात्रक-पातरा, २ पात्रबन्धक-झोली, ३ पात्रकेशरिका-ऊनकी पूंजनी, ४ गुच्छक-पात्र बाँधने के ऊनके गुच्छे, ५ पात्रस्थापनक-ऊन का कटका, ६ पटलक-पड़ला सूत का, ७ रजस्त्राण-सूत का बारीक वस्त्रखण्ड चोरस झोली जैसा, ८ कल्प-सूती चादर, तथा ऊनी कम्बल, ९ रजोहरण-धर्मध्वज, -ओघा, १० मुखवस्त्रिका-मुँहपत्ति, ११ मात्रक-तरपणी, १२ चोलपट्टा, १३ संस्तारक-संथारिया, और १४ उत्तरपट्टा, ये स्थविरकल्पी मुनि के चौदह उपकरण हैं । इनका प्रमाण, माप आदि ' ओघ-निर्युक्तिसूत्र ' से जान लेना चाहिये ।

योग ३, करण ३, संज्ञा ४, इन्द्रियाँ ५, स्थावरकाय ५, त्रसकाय ४, अजीव १ एवं १०, दशविध यतिधर्म को परस्पर गुणने से १८००० भेद शीलाङ्ग के होते हैं । यथा-क्षमायुक्त पृथ्वीकाय-संरक्षक श्रोत्रेन्द्रिय निरोधक, आहारसंज्ञा रहित मुनि मन से पाप नहीं करते, इसी प्रकार आर्जवादि नव यतिधर्म की योजना करने से १० भेद पृथ्वीकाय के संयोग से हुए । फिर अप्कायादि प्रत्येक नव पद के संयोग और श्रोत्रेन्द्रिय के सम्बन्ध से १०० भेद हुए, और चक्षुरिन्द्रियादि चार इन्द्रियों के सम्बन्ध से ४००, एवं कुल ५०० भेद आहारसंज्ञा के सम्बन्ध से हुए । अब शेष तीन संज्ञाओं के संयोग से १५००, एवं कुल २००० भेद करुं नहीं पद के सम्बन्ध से हुए । इसी तरह कराना और अनुमोदना पद के सम्बन्ध से दो दो हजार, एवं कुल ६००० भेद मन के संयोग से हुए । फिर वचन और काय के सम्बन्ध से छः छः हजार भेद हुए । इस तरह अठारह हजार भेद शीलाङ्ग के समझना चाहिये । यहाँ पर शीलाङ्ग का अर्थ शुद्ध प्रवर्तन और अत्युत्तम चारित्र पालन में व्यवहृत है ।

खामेमि सव्वे जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणई ॥ १ ॥

एवमहं आलोइअ, निंदिअ गरहिअ दुगुंछिअं सम्मं ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥ २ ॥

(खामेमि सव्वे जीवे) मैं जीवमात्र को शुद्धान्तष्करण से खमाता हूं- उनसे मांफी चाहता हूं, (सव्वे जीवा खमंतु मे) सभी जीव मुझे क्षमा-मांफी देवें, (मित्ती मे सव्वभूएसु) समस्त प्राणियों के साथ मेरा मैत्री-भाव है (वेरं मज्झ न केणई) कोई प्राणी के साथ मेरा वैरविरोध-शत्रुभाव नहीं है। (एवमहं) इस रीति से मैं (दुगुंछिअं) तिरस्कार करने योग्य पापकर्म की (सम्मं) भलीभाँति (आलोइअ) आलोचना करके (निंदिअ) आत्मसाक्षी से निन्दा, और (गरहिअ) गुरुसाक्षी से गर्हा करके (तिविहेण पडिक्कंतो) मन, वचन तथा काया सम्बन्धी त्रिविध योगे से प्रतिक्रमण करता हुआ मैं (जिणे चउव्वीसं) चोवीश जिनेश्वर-भगवन्तों को (वंदामि) वन्दन करता हूं।

श्रीश्रमण-पाक्षिकातिचार ।

" नाणम्मि दंसणम्मि अ, चरणम्मि तवम्मि तहय वीरियम्मि ।
आयरणं आयारो, इय एसो पंचहा भणिओ ॥ १ ॥ "

ज्ञानाचार दर्शनाचार चारित्राचार तपाचार वीर्याचार ए पंचविध आचार मांही अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस मांही सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सवि हुं मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ १ ॥

तत्र ज्ञानाचारे आठ अतिचार—

" काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तहय निन्हवणे ।
वंजण अत्थ तदुभए, अट्ठविहो नाणमायारो ॥ २ ॥ "

ज्ञान अकालवेलाए भण्यो गुण्यो, विनय-हीन, बहुमान-हीन, योग-उपधान-हीन, अनेरा[1] कन्हे भणी अनेरो[2] गुरु कह्यो,

---

[1] दूसरे गुरु के पास अभ्यास किया । [2] दूसरा गुरु बनाया ।

देववंदण वांदणे पडिक्कमणे सज्झाय करतां भणतां गुणतां कूडो अक्षर काने मात्रे आगलो ओछो भणिओ, सूत्र अर्थ विहुं[1] कूडा कह्या तथा तपोधनतणे[2] धर्मे काजो अणउद्धर्यो,[3] दांडे अणपडिलेहे,[4] वसति अणसोधी अणपवेइइं,[5] असज्झाइ-अणोझा[6] मांही श्रीदशवैकालिक प्रमुख सिद्धान्त भण्यो गुण्यो परावर्त्यो, योगोद्वहनविधि न कीधो, ज्ञानोपकरण-पाटी पोथी ठवणी कवली नवकारवाली सांपड़ा सांपड़ी दप्तरी-वही[7] ओलियां[8] प्रत्ये पग लाग्यो, थूंक लागो, थूंकेकरी[9] अक्षर मांज्यो, अनेरी कांई आशातना कीधी, प्रज्ञाहीन[10] हस्यो वितर्क्यो,[11] अनेरी कांई आशातना कीधी, अंतराय आशातना कीधी, ज्ञानवंत प्रत्ये प्रद्वेष मत्सर वह्यो,[12] अंतराय आशातना कीधी, ज्ञानाचार विषइओ[13] अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस मांही सूक्ष्म वादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सवि हुं मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ २ ॥

दर्शनाचारे आठ अतिचार—

"निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूह थिरीकरणे, वच्छल्लप्पभावणे अट्ठ ॥ ३ ॥"

देवगुरुधर्मतणे विषे निस्संकपणुं न कीधुं, परमताभिलाष-पणो कीधो, तथा एकान्त निश्चय धर्यो नहीं, धर्म सम्बन्धिया फलतणे विषे निस्सन्देह बुद्धि धरी नहीं, साधु साध्वीतणी

---

१ दोनों । २ साधु । ३ निकाले बिना । ४ प्रतिलेखन किये बिना । ५ बिना प्रमार्जन किये । ६ अस्वाध्याय, अनाध्याय, दोनों का स्वरूप भक्तामर के शब्दार्थ में देखो । ७ [illegible] । ८ लिखित कागद या भूंगला आदि । ९ थूंक से अक्षर मिटाया । १० मतिमन्दता से । ११ कुतर्क की । १२ धारण किया । १३ सम्बन्धी ।

निन्दा जुगुप्सा कीधी, मिथ्यात्वीतणी पूजा प्रभावना देखी मूढदृष्टिपणो कीधो, संघमांही गुणवंततणी अनुपवृंहणा[3] अस्थिरीकरण अवात्सल्य अप्रीति अभक्ति उपजावी[4] तथा देवद्रव्य गुरुद्रव्य साधारणद्रव्य भक्षित उपेक्षित प्रज्ञापराधे विणास्यो, विणसतां उवेख्यो[5], छतीशक्ते सार संभाल न कीधी, ठवणायरिअ[6] हाथथकी पड्या, पडिलेहवा[7] विसार्या, गुरुतणे[8] वेसणे पग लाग्यो दर्शनाचार विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस मांही सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सवि हुं मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ३ ॥

चारित्राचारे आठ अतिचार—

" पणिहाण जोगजुत्तो, पंचहिं समिईहिं तीहिं गुत्तीहिं ।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होई नायव्वो ॥ ४ ॥ "

ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभंडमत्तनिक्खेवणासमिति, पारिट्ठावणियासमिति, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, ए अष्टप्रवचनमाता[9] यतितणे[10] धर्मे सदैव रूडी[11] रीते पाली नहीं, खंडणे[12]—विराधना हुई । चारित्राचार विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस मांही सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सवि हुं मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ४ ॥

---

१ बुराई। २ चमत्कार। ३ प्रशंसा नहीं की। ४ पैदा की। ५ अपने क्या करना है? जिसकी जो जाने, करेगा सो भुगतेगा? ऐसी उपेक्षा की। ६ स्थापनाचार्य हाथ में से नीचे पड़े। ७ पडिलेहन करना भूल गये। ८ गुरु के आसन पर बैठे, या उससे पैर लगाया और उसका अनादर किया। ९ समिति गुप्ति का स्वरूप श्रमणसूत्रार्थ में देखो। १० साधु के। ११ अच्छी तरह से। १२ भंग किया, या विपरीत रूप से आचरण किया।

विशेषतश्चारित्राचारे—

" वयछक्कं कायछक्कं, अकप्पो गिहीभायणं ।
पलियंक निसिज्जाए, सिणाणं सोभ-वज्जणं ॥ ५ ॥ "

व्रतषट्के पहले महाव्रते-सूक्ष्म बादर जीवतणी विराधना हुई, बीजे महाव्रते-क्रोध लोभ भय हास्य-लगे कांई झूंठो बोल्यो, तीजे महाव्रते—

" सामीजीवादत्तं, तित्थयरत्तं तहेव गुरुएहिं ।
एवमदत्तादाणे, चउव्विहं विंति जगगुरुणो ॥ ६ ॥ "

सामी-अदत्त, जीव-अदत्त, तीर्थंकर-अदत्त, गुरु-अदत्त, ए चतुर्विध अदत्तादान मांही कांई परिभोगव्यो, चोथे महाव्रते-

" वसही कह निसिज्जिंदिय, कुड्डंतर पुव्वकीलिए पणीए ।
अइमयाहार विभूसणाइं, नव वंभचेरगुत्तीए ॥ ७ ॥ "

ए नव वाड़ी रूड़ीपरे पाली नहीं, पांचमे महाव्रते-धर्मोपकरणतणे विषे इच्छा मूर्च्छा गृद्धि आसक्त धरी, सर्वोपकरण उपयोग सहित पडिलेहा नहीं, छट्ठे रात्रिभोजनविरमणव्रते-असूरुं पाणी पीधो, पात्राबंधे खरंटो रह्यो, लेप तेल औषधा-

दिकलणी सन्निधि रह्यो, व्रतषट विषइओ अनरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस मांही सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सवि हुं मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ५ ॥

कायषट्के गामतणे पेसारे नीसारे पग पडिलेहवा विसार्या, माटी सीठो खड़ी धावड़ी[2] अरणेटो पाषाणतणी चातली[3] ऊपरे पग आव्यो, अप्काय–सूक्ष्म वाघारी[4] फुंसणा[5] हुआ, जलावगाह हुआ, वहोरवा गया ओलंखो[6] हाल्यो, लोटो ढल्यो तत्काल पतित काचापाणी तणा छांटा लाग्या, देहरे स्नात्रजल ऊपरे पग आव्यो, विहार करतां ठार धूंअरतणी विराधना हुई, तेउकाय–वीज दीवातणी उजेही हुई, राख वहोरता अंगारो अंबुं आड़ो हाल्यो, पाणी तणा छांटा अग्निमध्ये पड्या, वायुकाय–फूंक दीधी, हाथथकी कांई नाख्यो, कल्पक[8] कांवली तणा छेड़ा सावरा[9] न कीधा, वनस्पतिकाय–थड़ फल फूल शाखा प्रत्ये संघट्ट परिताप उपद्रव हुआ, त्रसकाय–द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय तणा संघट्ट परिताप उपद्रव हुआ, काग बग उडाव्या, ढोर त्रांसव्या[10], बालक बिहाव्या[11], षट्काय विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस मांही सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सवि हुं मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ६ ॥

१–[illegible] रहनी । २–हरमची, लालमिट्टी आदि । ३–चट्टान, शिला । ४–सचित्त जल का कुहासा । ५–स्पर्श, छूआ । ६–छींका, झूला, पंखा आदि । ७–सचित्त जल । ८–वस्त्र का । ९–[illegible] । १०–दूसरी दिशा । ११–डराना ।

अकल्पनीय[1]-पिंड शय्या वस्त्र पात्र परिभोगव्या, शय्या[2]-तरतणो-पिंड लाग्यो, उपयोग कीधा विना वहोर्यो, धात्री-दोष त्रस बीज संसक्त पूर्वकर्म पश्चात्कर्म संकेत[3] पिण्ड परि-भोगव्यो, उद्गम उत्पादना एषणा दोषे[4] रूड़ीपरे चिंतव्या नहीं, गृहस्थतणो भाजन अविधे[5]-वावर्यो भांज्यो[6]-फोड्यो केई वेला पाछो न आप्यो, सूतां शरीर[7]-हेठे संथारिया उत्तरपट्टा टलतुं अधिको[8] उपकरण घाल्युं, देहे-हस्त[9]स्नान मुख भीनो, हाथ वाह्यो, सर्वत्र स्नानतणी वांछा कीधी, शरीरतणो मेल[10]-फेड्यो, केश-रोम नख संमार्या[11], अनेरी कांई राढा[12]-विभूषा कीधी, अकल्पनीय पिण्ड विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस मांही सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सवि हुं मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ७ ॥

" आवस्सय सज्झाए, पडिलेहण झाण भिक्खु अब्भत्तट्ठे ।
आगमणे निग्गमणे, ठाणे निसीयण तुयट्टे य ॥ ९ ॥ "

उभयकाले अव्याक्षिप्त[13] चित्तपणे पडिक्कमणुं न कीधुं, पडिक्कमण मांही ऊंघ आवी, चार[14] वार सज्झाय, सात[15] वार

चैत्यवन्दना[1] न कीधी, पडिलेहण आघी–पाछी भणावी, अस्तव्यस्त[2] कीधुं, आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया, धर्मध्यान शुक्लध्यान ध्याया नहीं, वहोरवा गया दोष उपजतां जोया नहीं, दोषे[3] दुष्ट जाणी आहार परिहर्यो नहीं, छती शक्तिये पर्वतिथे विशेष तप उपवासादि[4] कीधुं नहीं, उपाश्रय मध्ये पेसतां निसरतां निसीहि आवस्सिही प्रमुख कहेवुं विसार्युं, दशविध[5] चक्रवालसमाचारी सांचवी नहीं, स्थानके कीडी-तणा नगरा शोध्या नहीं, वेसतां संडासा पडिलेहा नहीं, केवल भूमिकाए अविधे[6] वेठा, काजो रूड़ीपरे शोध्यो नहीं, संथारा–पोरिसीतणी विधि भणवी विसारी, वड़ाँ[7] प्रत्ये पसाय करी लोढ़ाँ[8] प्रत्ये इच्छकार इत्यादिक विनय सांचव्यो[9] नहीं, साधु–समाचारी विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस

का, प्रत्याख्यानसंवरने में 'सकलकुशलवल्ली' का, दैवसिक-प्रतिक्रमण में 'नमोऽस्तु वर्द्धमान' का और संथारापोरिसी भणाते हुए 'चउक्कसाय' का; ये ७ वार प्रतिदिन के चैत्यवन्दन जानना।

१ समय के आगे या बाद। २ छिन्नभिन्न। ३ दोष सहित। ४ एकासणा, आयंबिल, उपवास आदि। ५-चक्रवालसमाचारी १० प्रकार की है–१ **इच्छाकार**–योग्य कार्य करते रहो ऐसी गुरु की आज्ञा प्राप्त करना, २ **मिथ्याकार**–अज्ञान, या निरुपयोग से कोई भूल हो जाय उसका मिच्छा मि दुक्कडं देना, ३ **तथाकार**–सूत्रार्थ ग्रहण करते, या गुरु आज्ञा मिलते समय 'तहत्ति' कहना ४ **आवश्यकी**–उपाश्रयादि के बाहर जाते हुए 'आवस्सिही' कहना, ५-**नैषेधिकी**–उपाश्रयादि में प्रवेश करते समय 'निसीहि' कहना, ६ **आपृच्छना**–गुरु, या वड़िल से पूछे बिना कोई भी कार्य नहीं करना, ७ **प्रतिपृच्छना**-ध्यान, तप, जप, स्वाध्याय, अभ्यास, आदि सभी कार्य गुरु से बार बार पूछ कर ही करना, ८ **छन्दना**–आहारादि वस्तु ग्रहण करने की गुरु से प्रार्थना करना, ९ **निमंत्रणा**–आपको कोई वस्तु चाहिये तो वह लाऊं? गुरु से ऐसा निवेदन करना और १० **उपसंपत्**–ज्ञानादि गुण प्राप्त करने के वास्ते अन्य गच्छीय सुविहित आचार्यों के पास रहने, या जाने की गुरु से आज्ञा लेना। साधु योग्य नियमों को कार्य रूप से परिणत करना उसको 'चक्रवालसमाचारी' कहते हैं। ६-अयतना से। ७-दीक्षा पर्याय में मोटे साधु का। ८-दीक्षा पर्याय में छोटे साधु का। ९-आचरण किया नहीं।

मांही सूक्ष्म वादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सवि हुं मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ८ ॥

† एवंकारे श्रीसाधुतणे धर्मे एकविध असंयम तेतीस आशातना पर्यन्त जे कोई अतिचार पक्ष दिवस मांही सूक्ष्म वादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सवि हुं मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥ ९ ॥ इति ॥

---

६ कायोत्सर्गे अतिचारचिन्तन गाथा ।

सयणाऽऽसणऽन्नपाणे, चेइय जइ सिज्ज कायउच्चारे ।
समिई भावणा गुत्ती, वितहायरणे य अइयारे ॥ १ ॥

शब्दार्थ-(सयण) संथारा आदि अविधि से बिछाया १, (आसण) पाट, पाटला आदि अविधि से ग्रहण किये और वापरे २, (अन्नपाणे) आहार तथा अचित्त पानी अविधि से लिया या वापरा ३, (चेइय) जिन-मन्दिर में अविधि से प्रवेश, या वन्दन किया ४, (जइ) अविधि से मुनिवरों की विनय प्रतिपत्ति की, अथवा साधुधर्म का यथावत् पालन नहीं किया ५, (सिज्ज) वसति को प्रमार्जन नहीं की, या अयतना से प्रमार्जना की ६, (काय उच्चारे) स्थंडिल और पेशाब उपयोग और यतना से नहीं परठे, ७ (समिई) पांच समितियों का पालन अविधि से या विपरीत किया, ८ (भावणा) अनित्यादि द्वादश और महाव्रतों की पचीस भावनाओं को परि-पालन में उपयोग बराबर नहीं रक्खा, ९ (गुत्ती) और तीन गुप्तियों का उचित रीति से पालन नहीं किया। इस प्रकार साधु साध्वी को उक्त क्रियाओं में अनुपयोग, वितथाचरण और अयतना से अतिचार दोष लगना स्वाभाविक है। अतएव उभय काल सम्बन्धि प्रतिक्रमणक्रियाओं में किये जाते दो लोगस्स या

इवायाओ वेरमणं) सर्व प्रकार के जीवहिंसा रूप प्राणातिपात से अलग होना १, (सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं) सर्व प्रकार के असत्य भाषण रूप मृषावाद से अलग होना २, (सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं) सर्व प्रकार की चोरी करने रूप अदत्तादान से अलग होना ३, (सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं) सर्व प्रकार के स्त्री संभोगादि कामक्रीड़ा रूप मैथुन सेवन से अलग होना ४, (सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं) सर्व प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह एवं उसकी मूर्च्छा से अलग होना ५, और (सव्वाओ राइभोअणाओ वेरमणं) सर्व प्रकार के रात्रि–भोजन करने से अलग होना ६, यहाँ 'अलग' होने का अर्थ त्याग करना जानना चाहिये। साधु, साध्वियों को इनका पालन सर्व प्रकार से करना पड़ता है।

तत्थ खलु पढमे भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा, नेव सयं पाणे अइवाएज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा, पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

शब्दार्थ—(तत्थ खलु भंते) उनमें निश्चय से हे भगवन् ! (पढमे महव्वए) प्रथम महाव्रत में (पाणाइवायाओ वेरमणं) प्राणातिपात–जीवों के विनाश से अलग होना प्रभुने फरमाया है, इसलिये (भंते) गुरुवर ! (सव्वं पाणाइवायं) समस्त जीवों की हिंसा करने का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान करता हूं–उसको छोड़ता हूं। (से) उन (सुहुमं वा) चर्मचक्षु से नहीं दीखनेवाले सूक्ष्म जीव, (बायरं वा) चर्मचक्षु से दीखनेवाले बादर जीव,

१ 'वा' शब्द समस्त सजातीय जीवों का ग्रहण करने के वास्ते है। जैसे त्रसों में छोटे शरीरवाले कुन्थु आदि, बड़े शरीरवाले गौ, महिष, अश्व, हाथी आदि। स्थावरों में सूक्ष्म–नील-[illegible] बादर–पृथ्वी, जल, वृक्ष आदि। इसी तरह वनस्पति और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु [illegible] के भेद भी स्वयं जान लेना चाहिये।

(तसं वा) हलन चलन करने एवं त्रास पानेवाले त्रस जीव, (थावरं वा) पृथ्वीकायादि स्थावर जीव, (पाणे) इन चतुर्विध जीवों का (नेवसयं अइवाएज्जा) स्वयं विनाश नहीं करे, (नेवन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा) दूसरे किसी के पास भी त्रस, स्थावर जीवों का विनाश करावे नहीं, (पाणे अइवायंते) त्रस, स्थावर जीवों का विनाश करते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझे–उनकी अनुमोदना करे नहीं (जावज्जीवाए जीवन पर्यन्त (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप त्रिविध हिंसा को (मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप (तिविहेणं) त्रिविध योग से (न करेमि) नहीं करूं, (न कारवेमि) नहीं कराऊं, और (करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि) करते हुए दूसरों को भी अच्छा न समझूं, (तस्स भंते) हे प्रभो! भूतकाल में की गई उस हिंसा की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा लूं (निंदामि गरिहामि) आत्म साक्षी से उस पाप की निन्दा और गुरु साक्षी से गर्हा करूं (अप्पाणं वोसिरामि) पाप करनेवाली मेरी आत्मा का त्याग करूं।

से पाणाइवाए चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा–दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं पाणाइवाए छसु जीवनिकाएसु. खित्तओणं पाणाइवाए सव्वलोए, कालओणं पाणाइवाए दिया वा राओ वा, भावओणं पाणाइवाए रागेण वा दोसेण वा।

शब्दार्थ—(से पाणाइवाए) वह प्राणातिपात–जीवों का विनाश (चउव्विहे पन्नत्ते) चार प्रकार का प्ररूपे गए हैं। (तं जहा) वह इस प्रकार हैं कि (दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से। (दव्वओणं पाणाइवाए छसु) द्रव्य से प्राणातिपात–पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय (जीवनिकाएसु) इन षट्कायिक जीवनिकायों में किसी जीव की हिंसा, (खित्तओणं पाणाइवाए सव्वलोए) क्षेत्र के आश्रित प्राणातिपात–चौदह राजलोक प्रमाण में हिंसा, (कालओणं पाणाइवाए दिया वा राओ वा) काल आश्रित दिवस में, या रात्रि में प्राणातिपात–जीवों की हिंसा, और (भावओणं

पाणाइवाए रागेण वा दोसेण वा) भाव आश्रित राग तथा द्वेष से प्राणातिपात–जीवों की हिंसा होती है। अतीतकाल में धर्म प्राप्ति के पहले जीवों की हिंसा हुई हो उसकी विशेष निन्दा के लिये कहते हैं कि—

जं पि य मए इमस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अहिंसालक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणयमूलस्स, खंतिप्पहाणस्स, अहिरन्नसोवन्नियस्स, उवसमप्पभवस्स, नवबंभचेरगुत्तस्स, अपयमाणस्स, भिक्खाविचित्तिअस्स, कुक्खीसंवलस्स, निरग्गिसरणस्स, संपक्खालियस्स, चत्तदोसस्स, गुणग्गाहियस्स, निव्वियारस्स, निवित्तीलक्खणस्स, पंचमहव्वयजुत्तस्स, असंनिहिसंचयस्स, अविसंवाइयस्स, संसारपारगामिअस्स, निव्वाणगमणपज्जवसाणफलस्स ।

शब्दार्थ—(केवलिपन्नत्तस्स) केवलि भगवान का कहा हुआ १, (अहिंसालक्खणस्स) प्राणीमात्र की रक्षा करने करानेवाला २, (सच्चाहिट्ठियस्स) सत्य से व्याप्त ३, (विणयमूलस्स) विनय से उत्पन्न हुआ ४, (खंतिप्पहाणस्स) क्षमा से श्रेष्ठ ५, (अहिरन्नसोवन्नियस्स) सुवर्ण, रजत आदि, या अलङ्कार रूप सर्व परिग्रह से रहित ६, (उवसमप्पभवस्स) इन्द्रिय तथा मन के जय से उत्पन्न होनेवाला, ७ (नवबंभचेरगुत्तस्स) नवविध ब्रह्मचर्य गुप्तियों के सहित ८, (अपयमाणस्स) पचन, पाचन आदि आरम्भ से रहित ९, (भिक्खाविचित्तिअस्स) निर्दोष भिक्षा से आजीविका दिखानेवाला १०, (कुक्खीसंवलस्स) उदर–पूर्ति के बाहर कोई खाद्य वस्तु संचय नहीं करानेवाला ११, (निरग्गिसरणस्स) शीतादि कारण में भी अग्निसंघट्ट के आदेश से रहित १२, (संपक्खालियस्स) कर्म रूप फल को सम्यक्तया साफ करनेवाला १३, (चत्तदोसस्स) मिथ्यात्व, अज्ञान, द्वेष, आदि दोषों का विनाशक १४, (गुणग्गाहियस्स) गुण ग्रहण कराने का स्वभाववाला १५, (निव्वियारस्स) इन्द्रियों के विकारों को दूर करानेवाला १७, (निवित्तीलक्खणस्स) सर्व सावद्ययोग की विरति करानेवाला १७, (पंचमहव्वयजुत्तस्स) पांच महा-

व्रतों से युक्त १८, (असंनिहिसंचयस्स) मोदक, उदक, खजूर, हरड़े, मेवा, आदि का संचय न करानेवाला १९, (अविसंवाइयस्स) हठाग्रह, ममत्व, ईर्ष्या आदि विसंवाद से रहित २०, (संसारपारगामिअस्स) संसार-समुद्र का पार करानेवाला २१, और (निव्वाणगमणपज्जवसाणफलस्स) स्वर्गादि के सुख देकर, अन्त में मोक्ष का अक्षय्य सुख देनेवाला २२, (इमस्स धम्मस्स) इस प्रकार बाईस विशेषणवाला यह धर्म है। इस धर्म को अंगीकार करने के पहले (जं पि य मए) जो प्राणातिपात मैंने इन कारणों से—

पुव्विं अण्णाणयाए असवणयाए अबोहिए अणभिगमेणं अभिगमेण वा पमाएणं रागदोसपडिबद्धयाए बालयाए मोहयाए मंदयाए किड्डयाए तिगारवगरुयाए चउक्कसाओवगएणं पंचिंदियओवसट्टेणं पडुप्पन्नभारियाए सायासोक्खमणुपालयंतेणं इहं वा भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु पाणाइवाओ कओ वा काराविओ वा कीरंतो वा परेहिं समणुन्नाओ तं निंदामि गरिहामि तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं।

शब्दार्थ—(पुव्विं अण्णाणयाए) पूर्व काल में अज्ञानता-बिना समझ से १, (असवणयाए) गुरुमुख से नहीं श्रवण करने से २, (अबोहिए) सुनने पर भी धर्म का वास्तविक बोध न होने से ३. और (अणभिगमेणं) श्रवण और बोध होने पर भी धर्म का आचरण भलीभाँति नहीं करने से ४. इन चार कारणों से मेरे द्वारा प्राणातिपात हो गया हो उसका मैं त्याग करता हूं। अथवा (अभिगमेण वा) धर्म को अंगीकार करने पर भी (पमाएणं) मद्य, विषय, कषाय आदि प्रमादों से १, (रागदोसपडिबद्धयाए) राग और द्वेष की व्याकुलता से २, (बालयाए) बालभाव-अज्ञानता से ३, (मोहयाए) चित्त की व्याकुलता, या मोहनीय कर्म की आधीनता से ४, (मंदयाए) आलस्य आदि से ५, (किड्डयाए) द्यूतादि क्रीड़ा करने के कारण से ६, (तिगारवगरुयाए) ऋद्धि, रस, साता, इन तीन गारवों की गुरुता-अभिमान से ७, (चउक्कसाओवगएणं) क्रोधादि चार कषायों के उदय से ८, (पंचिंदिय-

ओवसट्टेणं) स्पर्शनादि पांच इन्द्रियों से उत्पन्न आर्त्तध्यान से ९, (पडुप्पन्न-भारियाए) कर्मों के भार से १०, (सायासोक्खमणुपालयंतेणं) और सातावेदनीय कर्मोदय से प्राप्त सुख भोगों की आसक्ति से ११, इन ग्यारह कारणों के वश से (इहं वा भवे) इस भव में अथवा (अन्नेसु वा भवग्गहणेसु) दूसरे अन्य भवों में (पाणाइवाओ) प्राणातिपात-जीवों का विनाश मैंने (कओ वा काराविओ वा कीरंतो वा परेहिं समणुन्नाओ) किया हो, कराया हो अथवा करते हुए दूसरों के पाप की अनुमोदना की हो (तं निंदामि गरिहामि) उस हिंसा जनक पाप की आत्मसाक्षी से निन्दा और गुरुसाक्षी से गर्हा करता हूं, (तिविहं) कृत, कारित और अनुमोदित रूप त्रिविध प्राणातिपात की (तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योग से निन्दा गर्हा करता हूं-उस पाप को अच्छा नहीं समझता-खराब मानता हूं।

अईयं निंदामि, पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि सव्वं पाणाइवायं जावज्जीवाए अणिस्सिओ हं नेव सयं पाणे अइवाएज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइवायावेज्जा, पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा। तं जहा—अरिहंतसक्खिअं, सिद्ध-सक्खिअं, साहूसक्खिअं, देवसक्खिअं, अप्पसक्खिअं। एवं भवइ भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय—विरय—पडिहयपच्च-क्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा।

शब्दार्थ—(अईअं) भूतकाल में किये गये (सव्वं पाणाइवायं) सूक्ष्म एवं स्थूल सर्व प्राणातिपात की (निंदामि) मैं निन्दा करता हूं, (पडुप्पन्नं संवरेमि) वर्त्तमानकाल में हुए प्राणातिपात का निवारण और (अणागयं पच्चक्खामि) भविष्यकाल में होनेवाले प्राणातिपात का प्रत्याख्यान-निषेध करता हूं। (अणिस्सिओ हं) उभयलोक की आशंसा से रहित हो कर मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (नेव सयं पाणे अइ-

वाएज्जा) स्वयं प्राणों का विनाश नहीं करूं, (नेवन्नेहिं पाणे अइवाया-वेज्जा) दूसरों के पास प्राणों का विनाश नहीं कराऊं, (पाणे अइवायंते वि) प्राणों का विनाश करते हुए (अन्ने न समणुजाणिज्जा) दूसरों को भी अच्छा नहीं समझूं, (तं जहा) वह इस प्रमाणे-(अरिहंतसक्खिअं) अरिहन्त प्रभु की साक्षी से, (सिद्धसक्खिअं) सिद्धभगवन्तों की साक्षी से, (साहू सक्खिअं) साधु, आचार्य, उपाध्याय महाराजों की साक्षी से, (देवसक्खिअं) अधिष्ठायिकादि देवों की साक्षी से और (अप्पसक्खिअं) विरति परिणामवाली अपनी आत्मा की साक्षी से प्रत्याख्यान लेता हूं। (एवं) इस प्रकार कि-(भिक्खू वा) साधु, अथवा (भिक्खुणी वा) साध्वी, (दिआ वा) दिवस में या (राओ वा) रात्रि में (एगओ वा) अकेले हों अथवा (परिसागओ वा) साधु या साध्वियों की सभा में हों, (सुत्ते वा) शयन किये हों, अथवा (जागरमाणे वा) जागते हुए हों, (संजय) सप्तदशविध संयमवन्त, (विरय) विविध प्रकार के तपों में रक्त और (पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) कर्मग्रन्थी का विनाश करके ज्ञानावरणी-यादि पापकर्म का नाश करनेवाले (भवइ) होते हैं, अर्थात् साधु या साध्वी निरन्तर संयमधारी, विरतिवन्त और पापकर्म से रहित होते हैं।

एस खलु पाणाइवायस्स वेरमणे हिए सुहे खमे निस्सेसिए आणुगामिए पारगामिए सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं अदुक्खणयाए असोयणयाए अजूरणयाए अतिप्पणयाए अपीडणयाए अपरियावणयाए अणोद्दवणयाए महत्थे महागुणे महाणुभावे महापुरिसाणुचिण्णे परमरिसिदेसिए पसत्थे तं दुक्खक्खयाए कम्मक्खयाए मोक्खयाए बोहिलाभाए संसारुत्तारणाए त्ति कट्टु उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।

शब्दार्थ—(एस खलु पाणाइवायस्स वेरमणे) यह प्राणातिपात विरमण व्रत निश्चय से (हिए) पथ्य भोजन के समान कल्याण करनेवाला है, (सुहे) प्यासे को शीतल जल मिलने के समान सुख देनेवाला है,

(खमे) उचित स्वरूपवाला है, और (निस्सेसिए) मुक्ति का कारण है, (आणुगामिए) उत्तरोत्तर भवों में सुख का अनुबन्ध करने तथा (पारगामिए) संसार का पार करानेवाला है, इसलिये (सव्वेसिं पाणाणं) सर्व पञ्चेन्द्रिय प्राणियों को (सव्वेसिं भूयाणं) सर्व एकेन्द्रिय जीवों को, (सव्वेसिं जीवाणं) नारकी, देव, मनुष्य एवं असंख्य वर्षायुष्यवाले नर, तिर्यञ्चों को (सव्वेसिं सत्ताणं) सोपक्रम आयुष्यवाले नर, तिर्यञ्च और विकलेन्द्रियों को (अदुक्खणयाए) दुःख नहीं देने से, (असोयणयाए) शोक, सन्ताप नहीं उपजाने से, (अजूरणयाए) शरीर को जीर्ण नहीं बना देने से, (अतिप्पणयाए) परसेवा, लार, आँसु नहीं उपजाने से, (अपीडणयाए) अंगोपांग के संकोच विकोच की पीड़ा नहीं देने से, (अपरियावणयाए) चारों ओर से शरीर को सन्ताप नहीं उपजाने से, (अणोद्दवणयाए) त्रास, या मरणकष्टादि उपद्रव नहीं करने से यह व्रत हित, सुख, क्षेम, निःश्रेयस आदि का करनेवाला है। तथा—

यह प्राणातिपातविरमण व्रत (महत्थे) महान् फल का दायक है, (महागुणे) महाव्रतादि महान् गुणों का आधार रूप है, (महाणुभावे) स्वर्ग, मोक्षादि का दायक होने से भारी माहात्म्यवाला है, (महापुरिसाणुचिन्ने) तीर्थङ्कर, गणधर आदि महापुरुषोंने इसको आचरण किया है, (परमरिसिदेसिए) भव्यप्राणियों के हितार्थ तीर्थङ्करादि महर्षियोंने इसे प्ररूपण किया है, और (पसत्थे) अत्यन्त विशुद्ध-शुभ है। इसलिये (दुक्खक्खयाए) शरीर एवं मन सम्बन्धी दुःखों का नाश करने वास्ते, (कम्मक्खयाए) ज्ञानावरणीयादि कर्मों का क्षय करने वास्ते, (मोक्खयाए) मोक्ष की प्राप्ति वास्ते, (बोहिलाभाए) जन्मान्तर में समकित की प्राप्ति वास्ते और (संसारुत्तारणाए) संसारसमुद्र को पार करने वास्ते (त्तिकट्टु) इस महाव्रत को सर्व प्रकार से (उवसंपज्जित्ताणं) अंगीकार करके (विहरामि) मासकल्पादि मर्यादा से विचरता हूं।

पढमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं।

शब्दार्थ—(भंते) हे भगवन्! (पढमे) पहले (महव्वए) महाव्रत

में (सव्वाओ) सर्व प्रकार के (पाणाइवायाओ) प्राणातिपात से (वेर-मणं) आज से निवृत्त—अलग होता हूं। इस महाव्रत के आरम्भ, मध्य और अन्त में 'भंते' यह शब्द गुरु का आमंत्रण वाची है। इसका हेतु यह है कि आज्ञा लिये बिना कोई भी कार्य करना अच्छा नहीं और कार्य किये बाद भी 'आप की आज्ञा प्रमाणे कार्य किया' ऐसा निवेदन करने से ही व्रताराधना सफल होती है। इस व्रत की यथावत् आराधना नहीं करनेवाले को नरकगति, अल्पायु, कुरूपत्व और अनेक रोगों की प्राप्ति होती है। सूक्ष्म, बादर, त्रस एवं स्थावर, इन चारों को मन, वचन, काया रूप तीन योगों से १२ तथा इनको तीन करणों के साथ गुणा करने से प्रथम महाव्रत के कुल ३६ भांगे होते हैं।

द्वितीय महाव्रत—

अहावरे दोच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं, सव्वं भंते! मुसावायं पच्चक्खामि, से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वएज्जा, नेवन्नेहिं मुसं वायावेज्जा, मुसं वयंते वि अन्ने न समणुजाणामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणु-जाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ—(अहावरे दोच्चे भंते) हे भगवन् ! प्रथम महाव्रत के बाद दूसरे (महव्वए) महाव्रत में (मुसावायाओ वेरमणं) मृषावाद—झूंठ बोलने से अलग होना प्रभु ने बतलाया है। इस से (सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि) हे प्रभो ! समस्त मृषावाद का प्रत्याख्यान करता हूं—इसका सर्व प्रकार से त्याग करता हूं, (से) वह (कोहा वा) क्रोध, मान, अहं-कार आदि से, (लोहा वा) लोभ, कपट—छलन आदि से, (भया वा) भय, लोकापवाद के डर आदि से, (हासा वा) हास्य, मजाक, खेल, कूद, पिशुनता आदि से (नेव सयं मुसं वएज्जा) मैं खुद असत्य बोलूं नहीं,

(नेवन्नेहिं मुसं वायावेज्जा) दूसरे किसी से असत्य बोलाऊं नहीं (मुसं वयंते वि) असत्य बोलते हुए भी (अन्ने न समणुजाणामि) दूसरों को अच्छा नहीं जानूं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप (तिविहं) तीन योग से, और (न करेमि न कारवेमि) असत्य भाषण नहीं करूं, नहीं कराऊं, तथा (करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि) असत्य बोलनेवाले अन्य को भी अच्छा नहीं समझूं (तिविहेणं) इन तीन कारण से। (तस्स भंते) हे भगवन्! उस मृषावाद सम्बन्धी पाप को (पडिक्कमामि) पडिकमता हूं, (निंदामि) निन्दता हूं (गरिहामि) गर्हा करता हूं और (अप्पाणं वोसिरामि) पापकारी अपनी आत्मा को वोसिराता-त्यजता हूं।

से मुसावाए चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओणं मुसावाए सव्वदव्वेसु, खित्तओणं मुसावाए लोए वा अलोए वा, कालओणं मुसावाए दिआ वा राओ वा, भावओणं मुसावाए रागेण वा दोसेण वा।

शब्दार्थ—(से) पूर्वोक्त (मुसावाए) मृषावाद (चउव्विहे) चार प्रकार का (पन्नत्ते) कहा गया है. (तंजहा) वो इस प्रकार है कि-(दव्वओ, खित्तओ कालओ भावओ) १ द्रव्य, क्षेत्र, ३ काल तथा ४ भाव आश्रित। (दव्वओणं मुसावाए सव्वदव्वेसु) द्रव्याश्रयी मृषावाद धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों की प्ररूपणा अन्यथा करने से, (खित्तओणं मुसावाए लोए वा अलोए वा) क्षेत्राश्रयी मृषावाद लोक अथवा अलोक विषयक विपरीत प्ररूपणा करने से, (कालओणं मुसावाए दिआ वा राओ वा) कालाश्रयी मृषावाद दिवस या रात्रि आदि में, और (भावओणं मुसावाए रागेण वा दोसेण वा) भावाश्रयी मृषावाद माया या लोभ के राग से, अथवा क्रोध या मान स्वरूप द्वेष से अथवा क्रोध मे किसी दास, याचक आदि को तुच्छ वचन कहना, तथा मान मे अबहुश्रुत हो कर भी मैं बहुश्रुत हूं, बड़ा जानकार हूं इत्यादि अपना उत्कर्ष दिखाना। मृषावाद के चार भेद और भी हैं–१ द्रव्य मे मृषावाद है, भाव से नहीं–किसी व्याधने राहगीर मे पूछा कि 'इधर से मृग गये हैं?' राहगीरने

दया के परिणाम से जवाब दिया कि 'न गये हैं और न हमें मालूम है' यह द्रव्य से मृषावाद है, भाव से नहीं। २ भाव से मृषावाद है, द्रव्य से नहीं— मृषा बोलने की धारणा से बोलते समय अकस्मात् सत्य बोल जाना, यह भाव से मृषावाद है, द्रव्य से नहीं। ३ भाव तथा द्रव्य दोनों से मृषावाद है—किसीने असत्य बोलने का विचार और बोलने के समय असत्य ही बोला, यह द्रव्य तथा भाव दोनों से मृषावाद है। ४ द्रव्य और भाव दोनों से मृषावाद नहीं, यह भेद शून्य ही समझना चाहिये।

जं पि य मए इमस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अहिंसालक्खणस्स, सच्चाहिट्ठिअस्स, विणयमूलस्स, खंतिप्पहाणस्स, अहिरण्णसोवन्निअस्स, उवसमप्पभवस्स, नवबंभचेरगुत्तस्स, अपचमाणस्स भिक्खावित्तिअस्स कुक्खीसंबलस्स, निरग्गिसरणस्स, संपक्खालिअस्स, चत्तदोसस्स, गुणग्गाहिअस्स, निव्विआरस्स, निव्वित्तिलक्खणस्स, पंचमहव्वयजुत्तस्स, असंनिहिसंचयस्स, अविसंवाइअस्स, संसारपारगामिअस्स, निव्वाणगमणपज्जवसाणफलस्स, पुव्विं अन्नाणयाए, असवणयाए, अबोहिए, अणभिगमेणं अभिगमेण वा, पमाएणं, रागदोसपडिबद्धयाए, बालयाए, मोहयाए, मंदयाए, किड्डयाए, तिगारवगरुआए, चउक्कसाओवगएणं पंचिंदिओवसट्टेणं, पडुप्पन्नभारियाए, सायासोक्खमणुपालयंतेणं।

इस पाठ का सम्पूर्ण प्रथम महाव्रत में लिखा है, वहीं से देख लेना

इहं वा भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु मुसावाओ भासिओ वा भासाविओ वा भासिज्जंतो वा परेहिं समणुन्नाओ तं निंदामि गरिहामि तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं,

अईअं निंदामि, पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं जावज्जीवाए अणिस्सिओ हं नेवसयं मुसं वएज्जा, नेवन्नेहिं मुसं वायावेज्जा, मुसं वयंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा। तं जहा–अरिहंतसक्खिअं सिद्धसक्खिअं साहू सक्खिअं देवसक्खिअं अप्पसक्खिअं, एवं भवइ भिक्खु वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, एस खलु मुसावायस्स वेरमणे।

शब्दार्थ—(इहं वा भवे) इस भव में, अथवा (अन्नेसु वा भवग्गहणेसु) अन्य भवान्तरों में (मुसावाओ) मृषावाद (भासिओ वा) बोला हो, अथवा (भासाविओ वा) दूसरे व्यक्तियों से मृषावाद बोलाया हो, और (भासिज्जंतो वा) असत्य बोलते हुए (परेहिं) दूसरों को (समणुन्नाओ) अच्छा माना हो (तं) उस मृषावाद की (निंदामि) आत्मसाक्षी से निन्दा तथा (गरिहामि) गुरुसाक्षी से गर्हा करता हूं (तिविहं) कृत, कारित एवं अनुमोदित रूप त्रिविध मृषावाद की (तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योग से निन्दा, गर्हा करता हूं और उसको अच्छा नहीं मानता। (अईअं) अतीतकाल में बोले गये मृषावाद की (निंदामि) निन्दा, (पडुप्पन्नं) वर्तमानकाल में बोले हुए मृषावाद का (संवरेमि) संवर–निषेध और (अणागयं) अनागतकाल में (पच्चक्खामि सव्वं मुसावायं) सर्व प्रकार के मृषावाद का प्रत्याख्यान–त्याग करता हूं। (अणिस्सिओ हं) उभयलोक की आशंसा–वांछा रहित हो मैं (जावज्जीवाए) जीवूं वहाँ तक–जीवन पर्यन्त (नेव सयं मुसं वएज्जा) खुद कभी असत्य नहीं बोलूं, (नेवन्नेहिं) दूसरे व्यक्तियों से भी कभी असत्य नहीं बोलाऊं, और (मुसं वयंते वि अन्ने) असत्य बोलते हुए अन्य व्यक्तियों को भी (न समणुजाणिज्जा) अच्छा नहीं जानूं (तं जहा) वह इस प्रकार कि–(अरिहंतसक्खिअं) अर्हन्त

भगवान् की, (सिद्धसक्खिअं) सिद्धपरमात्मा की, (साहू सक्खिअं) साधु, आचार्य, उपाध्याय आदि की, (देवसक्खिअं) अधिष्ठायकादि देवों की, तथा (अप्पसक्खिअं) अपनी आत्मा की, इन पांच साक्षियों से मृषावाद का त्याग करता हूं, (एवं) इस मुताबिक (भिक्खू वा भिक्खुणी वा) साधु अथवा साध्वी (दिआ वा राओ वा) दिवस में अथवा रात्रि में (एगओ वा परिसागओ वा) अकेले में अथवा साधु-सभा में (सुत्ते वा जागरमाणे वा) शयनावस्था में, अथवा जाग्रतावस्था में (संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) संयमवन्त, विविध तपों में रत और ज्ञानावरणीय आदि पापकर्मों का नाश करनेवाले (भवइ) होते हैं। (एस खलु) निश्चय से यह (मुसावायस्स वेरमणं) मृषावाद विरमण व्रत—

हिए सुहे खमे निस्सेसिए आणुगामिए पारगामिए सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूआणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं, अदुक्खणयाए असोअणयाए अजूरणयाए अतिप्पणयाए अपीडणयाए अपरिआवणयाए अणोद्दवणयाए महत्थे महागुणे महाणुभावे महापुरिसाणुचिन्ने परमरिसिदेसिए पसत्थे तं दुक्खक्खयाए कम्मक्खयाए मोक्खयाए बोहिलाभाए संसारुत्तारणाए त्ति कट्टु उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।

इस पाठ का भी अर्थ पहले महाव्रत में लिखे अनुसार जानना।

दोच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं।

शब्दार्थ—(दोच्चे भंते) हे भगवन्! दूसरे (महव्वए) महाव्रत में (सव्वाओ) आज से तमाम प्रकार के (मुसावायाओ) मृषावाद-असत्य भाषण का (वेरमणं) त्याग करने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हूं। इस व्रत का विराधक व्यक्ति गूंगा, तोतला और [illegible] होता है। क्रोध, लोभ, भय एवं हास्य को तीन योगों से साथ मृषा करने के कारण, और

इस प्रकार (भिक्खु वा भिक्खुणी वा) साधु अथवा साध्वी (दिआ वा राओ वा) दिवस या रात्रि में, (एगओ वा परिसागओ वा) अकेले या साधु समुदाय में, (सुत्ते वा जागरमाणे वा) सुप्तावस्था या जाग्रत अवस्था में (संजयविरय) संयम एवं विविध तपस्याओं में रक्त और (पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) ज्ञानावरणीय आदि पापकर्मों के नाश करनेवाले (भवइ) होते हैं। (एस खलु) निश्चय से यह (अदिन्नादाणस्स वेरमणे) अदत्तादानविरमण नामक तीसरा महाव्रत—

हिए सुहे खमे निस्सेसिए आणुगामिए पारगामिए सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूआणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं, अदुक्खणयाए, असोअणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपीडणयाए, अपरिआवणयाए, अणोद्दवणयाए, महत्थे महागुणे महाणुभावे महापुरिसाणुचिन्ने परमरिसिदेसिए, पसत्थे तं दुक्खक्खयाए कम्मक्खयाए मोक्खयाए बोहिलाभाए संसारुत्तारणाए त्ति कट्टु उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।

इस पाठ का अर्थ पहले महाव्रत में लिखे अनुसार ही जानना।

तच्चे भंते ! महव्वए उवाट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं।

शब्दार्थ—(तच्चे भंते) अब तीसरे (महव्वए) महाव्रत में आज से मैं (सव्वाओ) समस्त प्रकार के (अदिन्नादाणाओ) अदत्तादान का (वेरमणं) त्याग करने के लिये (उवट्ठिओमि) उपस्थित-प्रयत्नशील हुआ हूं। इस महाव्रत की विराधना करनेवाला व्यक्ति वध, बन्धन, दरिद्रता, आदि दोषों के पींजड़े में घिरता है। गाँव, नगर, अरण्य, अल्प, बहु, अणु, स्थूल, सचित्त और अचित्त इन नौ पदों को तीन योगों के साथ गुणा करने से २७, तथा २७ को तीन करणों के साथ गुणा करने से तीसरे महाव्रत के ८१ भांगे होते हैं।

चोथा महाव्रत—

अहावरे चउत्थे भंते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! मेहुणाओ पच्चक्खामि, से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्ख-जोणिअं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ—(अहावरं भंते चउत्थे) हे भगवन् ! अब अन्य चौथे (महव्वए) महाव्रत में (मेहुणाओ वेरमणं) मैथुन से सर्वथा अलग रहना प्रभुने कहा है । इस वास्ते (सव्वं भंते ! मेहुणं पच्चक्खामि) हे भगवन् ! समस्त प्रकार के मैथुन का निषेध—त्याग करता हूं (से) वह इस प्रकार कि– (दिव्वं वा माणुसं वा) देव सम्बन्धी वा मनुष्य सम्बन्धी, अथवा (तिरिक्खजोणिअं वा) तिर्यञ्चयोनि सम्बन्धी (नेव सयं मेहुणं सेविज्जा) मैं स्वयं मैथुन को सेवन नहीं करूं (नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा) अन्य किसीसे भी मैथुन सेवन नहीं कराऊं, और (मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणामि) मैथुन सेवन करते हुए अन्यों को भी अच्छा नहीं समझूं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योग से, और (तिविहेणं) त्रिविध करण से (न करेमि न कारवेमि) मैं नहीं करूं, नहीं कराऊं तथा (करंतं पि अन्नं) करते हुए भी अन्य किसी को (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझूं, अगर भूल हुई हो तो (तस्स भंते पडिक्कमामि) हे भगवन् ! उस पाप का त्याग, (निंदामि) आत्म साक्षी से उसकी निन्दा तथा (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हूं (अप्पाणं वोसिरामि) पापकारी मेरी इस आत्मा का त्याग करता हूं ।

से मेहुणे चउव्विहे पन्नत्ते, तंजहा—दव्वओ खित्तओ कालओ

इस प्रकार (भिक्खु वा भिक्खुणी वा) साधु अथवा साध्वी (दिआ वा राओ वा) दिवस या रात्रि में, (एगओ वा परिसागओ वा) अकेले या साधु समुदाय में, (सुत्ते वा जागरमाणे वा) सुप्तावस्था या जाग्रत अवस्था में (संजयविरय) संयम एवं विविध तपस्याओं में रक्त और (पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) ज्ञानावरणीय आदि पापकर्मों के नाश करनेवाले (भवइ) होते हैं। (एस खलु) निश्चय से यह (अदिन्ना-दाणस्स वेरमणे) अदत्तादानविरमण नामक तीसरा महाव्रत—

हिए सुहे खमे निस्सेसिए आणुगामिए पारगामिए सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूआणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं, अदुक्खणयाए, असोअणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपीडणयाए, अपरिआवणयाए, अणोद्दवणयाए, महत्थे महा-गुणे महाणुभावे महापुरिसाणुचिन्ने परमरिसिदेसिए, पसत्थे तं दुक्खक्खयाए कम्मक्खयाए मोक्खयाए बोहिलाभाए संसा-रुत्तारणाए त्ति कट्टु उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।

इस पाठ का अर्थ पहले महाव्रत में लिखे अनुसार ही जानना।

तच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं।

शब्दार्थ—(तच्चे भंते) अब तीसरे (महव्वए) महाव्रत में आज से मैं (सव्वाओ) समस्त प्रकार के (अदिन्नादाणाओ) अदत्तादान का (वेरमणं) त्याग करने के लिये (उवट्ठिओमि) उपस्थित-प्रयत्नशील हुआ हूं। इस महाव्रत की विराधना करनेवाला व्यक्ति वध, बन्धन, दरिद्रता, आदि दोषों के पींजड़े में घिरता है। गाँव, नगर, अरण्य, अल्प, बहु, अणु, स्थूल, सचित्त और अचित्त इन नौ पदों को तीन योगों के साथ गुणा करने से २७, तथा २७ को तीन करणों के साथ गुणा करने से तीसरे महाव्रत के ८१ भांग होते हैं।

चोथा महाव्रत—

अहावरे चउत्थे भंते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! मेहुणाओ पच्चक्खामि, से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्ख-जोणिअं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ—(अहावरं भंते चउत्थे) हे भगवन् ! अब अन्य चौथे (महव्वए) महाव्रत में (मेहुणाओ वेरमणं) मैथुन से सर्वथा अलग रहना प्रभुने कहा है। इस वास्ते (सव्वं भंते ! मेहुणं पच्चक्खामि) हे भगवन् ! समस्त प्रकार के मैथुन का निषेध–त्याग करता हूं। (से) वह इस प्रकार कि– (दिव्वं वा माणुसं वा) देव सम्बन्धी या मनुष्य सम्बन्धी, अथवा (तिरिक्खजोणिअं वा) तिर्यग्योनि सम्बन्धी (नेव सयं मेहुणं सेविज्जा) मैं स्वयं मैथुन को सेवन नहीं करूं (नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा) अन्य किसीसे भी मैथुन सेवन नहीं कराऊं, और (मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणामि) मैथुन सेवन करते हुए अन्यों को भी भला नहीं समझूं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योग से, और (तिविहेणं) त्रिविध करण से (न करेमि न कारवेमि) मैं नहीं करूं, नहीं कराऊं तथा (करंतं पि अन्नं) करते हुए भी अन्य किसी को (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझूं. अगर भूल हुई हो तो (तस्स भंते पडिक्कमामि) हे भगवन् ! उस पाप का त्याग, (निंदामि) आत्म साक्षी से उसकी निंदा तथा (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हूं (अप्पाणं वोसिरामि) पापकारी मेरी इस आत्मा का त्याग करता हूं।

से मेहुणे चउव्विहे पन्नत्ते, तंजहा—दव्वओ खित्तओ कालओ

भावओ। दव्वओणं मेहुणे रूवेसु वा रूवसहगएसु वा, खित्तओणं मेहुणे उड्ढलोए वा अहोलोए वा तिरिअलोए वा, कालओणं मेहुणे दिआ वा राओ वा, भावओणं मेहुणे रागेण वा दोसेण वा।

शब्दार्थ—(से मेहुणे चउव्विहे पन्नत्ते) वह मैथुन चार प्रकार का है (तं जहा) वही कहते हैं–१ (दव्वओणं मेहुणे रूवेसु वा रूवसहगएसु वा) द्रव्य आश्रित–मैथुन चित्रचित्रित स्त्री आदि अजीव वस्तु या सजीव मनुष्यादि में, २ (खित्तओणं मेहुणे) क्षेत्र आश्रित–मैथुन (उड्ढलोए वा अहोलोए वा तिरिअलोए वा) मेरु के वनखण्ड, या देवलोक रूप ऊर्ध्वलोक में, कुबड़ीविजय, भवनपत्यादि भवन रूप अधोलोक में, और द्वीप, पर्वत आदि तिर्च्छेलोक में, ३ (कालओणं मेहुणे दिआ वा राओ वा) काल आश्रित–मैथुन दिन या रात्रि में, ४ (भावओणं मेहुणे रागेण वा दोसेण वा) भावआश्रित मैथुन–माया, लोभ रूप राग से और क्रोध, अभिमान रूप द्वेष से संभव है।

द्रव्य एवं भाव से मैथुन के चार भेद भी हैं–१ द्रव्य से मैथुन सेवा है, पर भाव से नहीं। कोई पुरुष किसी निर्विकार स्त्री के साथ बलात्कार से मैथुन सेवन करे तो स्त्री को द्रव्य से मैथुन दोष लगेगा, भाव से नहीं। २ भाव से मैथुन सेवा, पर द्रव्य से नहीं। किसी पुरुष के परिणाम मैथुन सेवा के हुए परन्तु उसके सेवन का योग नहीं मिला तो उसको भाव से मैथुन सेवन का दोष लगा, पर द्रव्य से नहीं। ३ कोई पुरुष या स्त्री द्रव्य एवं भाव दोनों से मैथुन सेवन करे और ४ कोई द्रव्य एवं भाव दोनों से मैथुन सेवन नहीं करे। इनमें चौथा भेद शून्य है और उसको मैथुन सम्बन्धी कोई दोष नहीं लगता।

जं पि य मए इमस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स, अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठिअस्स, विणयमूलस्स, खंतिप्पहाणस्स, अहिरन्नसोवन्निअस्स, उवसमप्पभवस्स, नववंभचेरगुत्तस्स, अपयमाणस्स, भिक्खावित्तिअस्स, कुक्खीसंवलस्स, निरग्गी-

सरणस्स, संपक्खालिअस्स, चत्तदोसस्स, गुणग्गाहिअस्स, निव्विआरस्स, निव्वित्तिलक्खणस्स, पंचमहव्वयजुत्तस्स, असंनिहिसंचयस्स, अविसंवाइयस्स, संसारपारगामिअस्स, निव्वाणगमणपज्जवसाणफलस्स, पुव्विं अन्नाणयाए असवणयाए, अबोहिए अणभिगमेणं अभिगमेण वा, पमाएणं रागदोसपडिबद्धयाए, बालयाए, मोहयाए, मंदयाए, किड्डयाए, निगारवगरुआए, चउक्कसाओवगएणं, पंचिंदियओवसट्टेणं, पडुप्पन्नभारिआए, सायासोक्खमणुपालयंतेणं इहं वा भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु ।

इस पाठ का अर्थ प्रथम महाव्रत में लिखे अनुसार जानना ।

मेहुणं सेविअं वा सेवाविअं वा सेविज्जंतं वा परेहिं समणुन्नाओ तं निंदामि गरिहामि तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं। अईअं निंदामि पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि सव्वं मेहुणं, जावज्जीवाए, अणिस्सिओ। नेव सयं मेहुणं सेविज्जा। नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा। मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणामि, तं जहा—अरिहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहूसक्खियं, देवसक्खियं, अप्पसक्खियं, एवं भवइ भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय विरय पडिहय—पच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा एस खलु मेहुणस्स वेरमणे ।

भावार्थ (मेहुणं सेविअं वा) मैथुन सेवन किया, (सेवाविअं वा) मैथुन सेवन कराया और (सेविज्जंतं वा परेहिं समणुन्नाओ) मैथुन सेवन करते हुए अन्य लोगों को अच्छा समझा हो, [illegible]

परिगिण्हेज्जा) खुद ग्रहण करूं नहीं, (नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हावेज्जा) दूसरे किसीसे परिग्रह ग्रहण कराऊं नहीं, (परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने) परिग्रह को ग्रहण करते हुए अन्य को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं जानूं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योग से (तिविहेणं न करेमि न कारवेमि) परिग्रह ग्रहण करूं नहीं, कराऊं नहीं और (करंतं पि अन्नं) परिग्रह को ग्रहण करते हुए अन्य को भी (न समणुजाणामि) अच्छा जानूं नहीं त्रिविध करण से। (तस्स भंते ! पडिक्कमामि) हे भगवन् ! उस परिग्रह सम्बन्धी पाप का मैं निषेध करता हूं, (निंदामि गरिहामि) निन्दा, गर्हा और (अप्पाणं वोसिरामि) उस पापकारी मेरी आत्मा का त्याग करता हूं।

से परिग्गहे चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा—दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं परिग्गहे सचित्ताचित्तमीसेसु दव्वेसु, खित्तओणं परिग्गहे लोए वा अलोए वा, कालओणं परिग्गहे दिआ वा राओ वा, भावओणं परिग्गहे अप्पग्घे वा महग्घे वा रागेण वा दोसेण वा।

शब्दार्थ—(से परिग्गहे) वह परिग्रह (चउव्विहे पन्नत्ते) चार प्रकार का कहा गया है (तं जहा) जो इस प्रकार है-(दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव आश्रित। (दव्वओणं परिग्गहे) द्रव्याश्रित-परिग्रह (सचित्ताचित्तमीसेसु दव्वेसु) सचित्त-माता पिता, स्त्री बालक आदि पर ममता, स्नेह रखने सम्बन्धी, तथा मिश्र-आभूषणादि सहित जीव वस्तु पर मूर्च्छा रखने सम्बन्धि द्रव्यों में (खित्तओणं परिग्गहे लोए वा अलोए वा) क्षेत्राश्रित-परिग्रह लोक या अलोक में (कालओणं परिग्गहे दिया वा राओ वा) कालाश्रित-परिग्रह दिवस या रात्रि में, और (भावओणं परिग्गहे) भावाश्रित-परिग्रह (अप्पग्घे वा महग्घे वा) अल्पमूल्य वस्तु, या बहुमूल्य वस्तु में, (रागेण वा दोसेण वा) राग या द्वेष से होना संभव है।

इस व्रत के भी द्रव्य और भाव आश्रयी चार विभाग हैं-१ कोई साधु द्रव्य से

उपकरण रखता है, पर उन पर मूर्च्छा नहीं रखता. इससे उसे द्रव्य से परिग्रह है, परन्तु भाव से नहीं । २ कोई साधु की किसी वस्तु पर मूर्च्छा है पर वह वस्तु उसे मिलती नहीं है, उसको भाव से परिग्रह है, द्रव्य से नहीं । ३ किसीको किसी वस्तु पर मूर्च्छा हो और वह उसे मिल जाय तो द्रव्य और भाव दोनों से परिग्रह है। ४ किसी की मूर्च्छा द्रव्य और भाव दोनों से न हो, उसे द्रव्य तथा भाव दोनों से परिग्रह नहीं है । जो साधु प्रत्येक वस्तु की मूर्च्छा से सर्वथा अलग रहते हैं, उन्हें परिग्रह दोष नहीं लगता ।

वायाए काएणं, अईअं निंदामि पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि सव्वं परिग्गहं, जावज्जीवाए अणिस्सिओ हं नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हेज्जा नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हावेज्जा परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा तं जहा—अरिहंतसक्खिअं, सिद्धसक्खिअं, साहू सक्खिअं, देवसक्खिअं, अप्पसक्खिअं, एवं भवइ भिक्खु वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा, सुत्ते वा जागरमाणे वा, एस खलु परिग्गहस्स वेरमणे—

शब्दार्थ—(परिग्गहो गहिओ वा गाहाविओ वा) परिग्रह ग्रहण किया हो, या दूसरों से ग्रहण कराया हो, अथवा (घिप्पंतो वा परेहिं समणुन्नाओ) परिग्रह ग्रहण करते हुए अन्यों की अनुमोदना की हो (तं निंदामि गरिहामि) उसकी निन्दा, गर्हा (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप त्रिविध करण से (तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योग से करता हूं। (अईअं निंदामि) अतीत काल में ग्रहण किये परिग्रह की निन्दा, (पडुप्पन्नं संवरेमि) वर्तमान काल में ग्रहित परिग्रह का संवर-निषेध और (अणागयं पच्चक्खामि सव्वं परिग्गहं) अनागत काल सम्बन्धी सर्व परिग्रह का त्याग करता हूं, (अणिस्सिओ हं) किसी सुख की कामना न रखते हुए (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हेज्जा) मैं खुद परिग्रह ग्रहण नहीं करूं, (नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हावेज्जा) दूसरों के पास परिग्रह ग्रहण कराऊं नहीं, (परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा) परिग्रह ग्रहण करते हुए दूसरों की भी अनुमोदना करूं नहीं, (तं जहा) वह इस प्रकार कि (अरिहंतसक्खिअं) अरिहन्तप्रभु की साक्षी से, (सिद्धसक्खिअं) सिद्धपरमात्मा की साक्षी से, (साहू सक्खिअं) साधु, आचार्य, उपाध्यायादि की साक्षी से, (देवसक्खिअं) अधिष्ठायकादि शासन देवों की साक्षी से, तथा (अप्पसक्खिअं)

अपनी आत्मा की साक्षी से परित्याग करता हूं। (एवं) इस प्रकार से (भिक्खु वा भिक्खुणी वा) साधु अथवा साध्वी (दिआ वा राओ वा) दिन में या रात्रि में (एगओ वा परिसागओ वा) अकेला में या साधु समुदाय में (सुत्ते वा जागरमाणे वा) शयन में या जाग्रत अवस्था में (संजय-विरय-पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) सप्तदशविध संयम पालक, द्वादशविध तप में अनुरक्त और ज्ञानावर्णीयादि पापकर्मों के नाश करनेवाले (भवइ) होते हैं। (एस खलु) निश्चय से यह (परिग्गहस्स वेरमणे) परिग्रहविरमण-महाव्रत-

हिए, सुहे, खमे, निस्सेसिए, आणुगामिए, पारगामिए, सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूआणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं, अदुक्खणयाए, असोअणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पण-याए, अपीडणयाए, अपरिआवणयाए, अणोद्दवणयाए, महत्थे महागुणे, महाणुभावे, महापुरिसाणुचिण्णे, परमरिसिदेसिए, पसत्थे तं दुक्खक्खयाए, कम्मक्खयाए, मोक्खयाए, बोहिला-भाए, संसारुत्तारणयाए त्ति कट्टु उवसंपज्जित्ताणं विहरामि

छट्ठा रात्रिभोजनविरमणव्रत—

अहावरे छट्ठे भंते ! वए राईभोअणाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! राईभोअणं पच्चक्खामि, से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा, नेव सयं राइं भुंजेज्जा, नेवन्नेहिं राइं भुंजावेज्जा, राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थ— (अहावरे छट्ठे भंते वए) हे भगवन् ! अन्य छट्ठे व्रत में (राईभोअणाओ वेरमणं) रात्रिभोजन से विराम लेता हूं, (सव्वं भंते) हे भगवन् ! समस्त प्रकार के (राईभोअणं पच्चक्खामि) रात्रिभोजन का त्याग करता हूं । (से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा) वह इस प्रकार कि अशन–भात, दाल आदि, पानं–सर्व जाति के पानी, खाद्य–खजूर, द्राक्ष आदि, और स्वादिम–ताम्बूल, चूर्ण आदि, (नेव सयं राइं भुंजेज्जा) मैं खुद रात्रि में खाऊं नहीं, (नेवन्नेहिं राइं भुंजावेज्जा) दूसरों को रात्रि में खवाऊं नहीं, तथा (राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणामि) रात्रि में खाते हुए दूसरों को भी अच्छा नहीं जानूं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप तीन करण से (तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योग से (न करेमि न कारवेमि) रात्रिभोजन नहीं करूं, नहीं कराऊं, और (करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि) रात्रिभोजन करते हुए दूसरों का भी अनुमोदन नहीं करुं । (तस्स भंते) हे भगवन् ! उस रात्रिभोजन सम्बन्धी पाप का (पडिक्कमामि) निषेध (निंदामि) आत्मसाक्षी से निन्दा (गरिहामि) गुरुसाक्षी से गर्हा करता हूं (अप्पाणं वोसिरामि) रात्रिभोजन सम्बन्धी पापकारी आत्मा का त्रिविध प्रकार से त्याग करता हूं ।

१ रात्रि में ग्रहण करना रात्रि में खाना, २ रात्रि में ग्रहण करना, दिवस में

खाना, ३ दिवस में ग्रहण करना, रात्रि में खाना और ४ दिवस में ग्रहण करना, दिवस में खाना; ये रात्रिभोजन की चतुर्भंगी है। इसमें एक चौथा भांगा ही शुद्ध है, शेष तीन भांगे आचरण करने योग्य नहीं हैं।

से राइभोअणे चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा—दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं राइभोअणे असणे वा पाणे वा खाइमे वा साइमे वा, खित्तओणं राइभोअणे समयखित्ते, कालओणं राइभोअणे दिआ वा राओ वा, भावओणं राइभोअणे तित्ते वा कडुए वा कसाए वा अंबिले वा महुरे वा लवणे वा रागेण वा दोसेण वा।

रात्रि में खाने का विचार कर रात्रि में खावे, उसको द्रव्य एवं भाव दोनों से रात्रि-भोजन का दोष लगता है। ४ कोई द्रव्य और भाव दोनों से रात्रिभोजन नहीं करता, यह भांगा शुद्ध है, शेष भांगे अशुद्ध हैं।

जं पि य मए इमस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स, अहिंसालक्खणस्स, सच्चाहिट्ठिअस्स, विणयमूलस्स, खंतिप्पहाणस्स, अहिरन्नसोवन्निअस्स, उवसमप्पभवस्स, नववंभचेरगुत्तस्स, अपयँमाणस्स, भिक्खाविंत्तिअस्स, कुक्खीसंवलस्स, निरग्गीसरणस्स, संपक्खालिअस्स, चत्तदोसस्स, गुणग्गाहिअस्स, निविआरस्स, निविंत्तिलक्खणस्स, पंचमहव्वयजुत्तस्स, असंनिहिसंचयस्स, अविसंवाइअस्स, संसारपारगामिअस्स, निव्वाणगमणपज्जवसाणफलस्स, पुव्विं अण्णाणयाए, असवणयाए, अवोहिए, अणभिगमेणं अभिगमेण वा, पमाएणं रागदोसपडिवद्धयाए, वालयाए, मोहयाए, मंदयाए, किड्डयाए, तिगारवगरुआए, चउक्कसाओवगएणं, पंचिंदियओवसट्टेणं, पडुप्पन्नभारियाए, सायासोक्खमणुपालयंतेणं इहं वा भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु।

इस पाठ का अर्थ प्रथम महाव्रत में लिखे अनुसार ही जानना।

राईभोअणं भुंजियं वा भुंजाविअं वा भुंजंतं वा परेहिं समणुन्नाओ तं निंदामि गरिहामि तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं, अईअं निंदामि पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि सव्वं राईभोअणं, जावज्जीवाए अणिस्सिओ हं नेव सयं राईभोअणं, भुंजेज्जा, नेवन्नेहिं राईभोअणं भुंजावेज्जा राईभोअणं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा तं जहा-अरिहंतसक्खिअं, सिद्धसक्खिअं, साहू सक्खिअं, देवसक्खिअं, अप्प-

सविग्घअं । एवं भवइ भिक्खु वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-
पडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा
परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, एस खलु राइभो-
अणस्स वेरमणे ।

शब्दार्थ—(राईभोअणं भुंजियं वा) रात्रिभोजन किया हो, (भुंजा-
विअं वा) दूसरों को रात्रिभोजन कराया हो (भुंजंतं वा परेहिं समणु-
जाणामि) रात्रिभोजन करते हुए दूसरे लोगों को अच्छा माना हो (तं निंदामि
गरिहामि) उसकी आत्मसाक्षी से निन्दा और गुरुसाक्षी से गर्हा (तिविहं
तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योग
एवं कृत, कारित, अनुमोदित रूप तीन करण से करता हूं (अईयं निंदामि)
अतीत काल में किये रात्रिभोजन की निन्दा, (पडुप्पन्नं संवरेमि) [illegible]
काल में किये रात्रिभोजन का निरोध, और (अणागयं पच्चक्खामि सव्वं
राईभोअणं) अनागत काल सम्बन्धी समस्त [illegible]
हूं । ([illegible]) किसी प्रकार [illegible]
([illegible]) जीवन पर्यंत ([illegible])

पावकम्मे) संयम और विरत—विविध तपः करण में अनुरक्त और ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का नाश करनेवाले (भवइ) होते हैं। (एस खलु) निश्चय से यह (राईभोअणस्स वेरमणे) रात्रिभोजन विरमण नाम का छट्ठा व्रत—

हिए, सुहे, खमे, निस्सेसिए, आणुगामिए, पारगामिए, सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूआणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं, अदुक्खणयाए, असोअणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपीडणयाए, अपरियावणयाए, अणुद्दवणयाए, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महापुरिसाणुचिन्ने, परमरिसिदेसिए, पसत्थे तं दुक्खक्खयाए, कम्मक्खयाए, मोक्खयाए, बोहिलाभाए, संसारुत्तारणयाए, त्ति कट्टु उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।

इस पाठ का अर्थ प्रथम महाव्रत में लिखे अनुसार ही जानना।

छट्ठे भंते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राईभोअणाओ वेरमणं।

शब्दार्थ—(छट्ठे भंते वए) हे भगवन्! छट्ठे व्रत में (सव्वाओ) समस्त प्रकार के (राईभोअणाओ वेरमणं) रात्रिभोजनविरमणव्रत के लिये (उवट्ठिओमि) उपस्थित—उद्यमवन्त हुआ हूं। ऋषभदेव प्रभु के शासन में साधु, साध्वी ऋजुजड़ और वीरप्रभु के शासन में वक्रजड़ होते हैं। इसलिये उनके शासन में रात्रिभोजनवेरमण व्रत मूलगुण में गिना गया है। अजितनाथादि बाईस तीर्थकरों के शासन में साधु साध्वी ऋजुप्राज्ञ होते हैं, उनके लिये रात्रिभोजनविरमण व्रत को उत्तरगुण में माना गया है। अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, इन पदों को तीन योगों के साथ गुणा करने से १२, तथा बारह को तीन करणों के साथ गुणा करने से इस व्रत के कुल ३६ भांगे होते हैं। इस प्रकार पांच महाव्रत तथा छट्ठा व्रत एवं षड्व्रतों के मिल कर २७० भांगे समझना चाहिये।

सद्दारूवारसागंधा—फासाणं पवियारणा ।
मेहुणस्स वेरमणे, एस वुत्ते अइक्कमे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—(उग्गहं च) उपाश्रय के स्वामी की (अजाइत्ता) आज्ञा लिये विना उसमें रहना (अविद्दिण्णे य) और विना आज्ञा के (उग्गहे) अवग्रह-उपाश्रय की मर्यादा में चेष्टा-प्रपंच करना (अदिण्णादाणस्स वेरमणे) इससे अदत्तादानविरमण व्रत का (अइक्कमे) अतिक्रम होता है (एस) ऐसा (वुत्ते) प्रभुने कहा है। (सद्दा) बांसुरी, सितार, वीणा एवं स्त्रियों के सुरीले गीत आदि शब्द, (रूवा) स्त्री, आदि के मोहक रूप, (रसा) मधुरादि रस, (गंधा) अत्तर, चन्दन, पुष्पमाला आदि की गन्ध, तथा (फासाणं) कोमल, स्त्री आदि के स्पर्श, इन इन्द्रिय विषयों का (पवियारणा) रागभाव से सेवन करने से (मेहुणस्स वेरमणे) मैथुनविरमण व्रत का (अइक्कमे) अतिक्रम-उल्लंघन होता है (एस वुत्ते) ऐसा जिनेन्द्र भगवन्तोंने कहा है।

इच्छा मुच्छा य गेही य, कंखा लोभे य दारुणे ।
परिग्गहस्स वेरमणे, एस वुत्ते अइक्कमे ॥ ५ ॥
अइमत्ते य आहारे, सूरखित्तम्मि संकिए ।
राईभोअणस्स वेरमणे, एस वुत्ते अइक्कमे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ-(इच्छा) अप्राप्त पदार्थों की प्रार्थना (मुच्छा य) और नाश पाये हुए पदार्थों का शोक-सन्ताप, (गेही य) विद्यमान पदार्थ के ऊपर आसक्ति-प्रेम, (कंखा) अप्राप्त पदार्थों की आकांक्षा-अभिलाषा, इन पर (दारुणे लोभे य) अत्यन्त लोभ रखने से (परिग्गहस्स वेरमणे) परिग्रहविरमण व्रत का (अइक्कमे) अतिक्रम होता है (एस वुत्ते) ऐसा तीर्थंकरोंने कहा है। (अइमत्ते य आहारे) रात्रि में उलाले आनेवाला प्रमाण से अधिक आहार करने से, (सूरखित्तम्मि संकिए) सूर्य ऊगा या नहीं ? अथवा सूर्य अस्त हुआ या नहीं ? ऐसी शंका रहते हुए आहार करने से (राईभोअणस्स वेरमणे) रात्रिभोजनविरमण व्रत का (अइक्कमे) अतिक्रम होता है

(एवम् सुत्ते) ऐसा जिनेन्द्र भगवन्तोंने कहा है। इसको सर्वतोभाँति समझ कर उक्त अतिक्रम-अतिचारदोषों का सर्व प्रकार से त्याग कर देना चाहिये।

दंसणनाणचरित्ते, अविराहित्ता ठिओ समणधम्मे।
पढमं वयमणुरक्खे, विरयामो पाणाइवायाओ ॥ ७ ॥

दंसणनाणचरित्ते, अविराहित्ता ठिओ समणधम्मे।
बीअं वयमणुरक्खे, विरयामो मुसावायाओ ॥ ८ ॥

दंसणनाणचरित्ते, अविराहित्ता ठिओ समणधम्मे।
तइयं वयमणुरक्खे, विरयामो अदिन्नादाणाओ ॥ ९ ॥

दंसणनाणचरित्ते, अविराहित्ता ठिओ समणधम्मे।
चउत्थं वयमणुरक्खे, विरयामो मेहुणाओ ॥ १० ॥

दंसणनाणचरित्ते, अविराहित्ता ठिओ समणधम्मे।
पंचमं वयमणुरक्खे, विरयामो परिग्गहाओ ॥ ११ ॥

दंसणनाणचरित्ते, अविराहित्ता ठिओ समणधम्मे।
छट्ठं वयमणुरक्खे, विरयामो राईभोयणाओ ॥ १२ ॥

आलयविहारसमिओ, जुत्तो गुत्तो ट्ठिओ समणधम्मे ।
पढमं वयमणुरक्खे, विरयामो पाणाइवायाओ ॥ १३ ॥

आलयविहारसमिओ, जुत्तो गुत्तो ट्ठिओ समणधम्मे ।
बीयं वयमणुरक्खे, विरयामो मुसावायाओ ॥ १४ ॥

आलयविहारसमिओ, जुत्तो गुत्तो ट्ठिओ समणधम्मे ।
तइयं वयमणुरक्खे, विरयामो अदिन्नादाणाओ ॥ १५ ॥

आलयविहारसमिओ, जुत्तो गुत्तो ट्ठिओ समणधम्मे ।
चउत्थं वयमणुरक्खे, विरयामो मेहुणाओ ॥ १६ ॥

आलयविहारसमिओ, जुत्तो गुत्तो ट्ठिओ समणधम्मे ।
पंचमं वयमणुरक्खे, विरयामो परिग्गहाओ ॥ १७ ॥

आलयविहारसमिओ, जुत्तो गुत्तो ट्ठिओ समणधम्मे ।
छट्ठं वयमणुरक्खे, विरयामो राईभोयणाओ ॥ १८ ॥

[illegible]

दुविहं चरित्तधम्मं, दुन्नि अ झाणाइं धम्मसुक्काइं ।
उवसंपन्नो जुत्तो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—(दो चेव रागदोसे) निश्चय ही राग और द्वेष इन दोनों को, (दुन्नि अ झाणाइं अट्टरुद्दाइं) आर्त्त और रौद्र इन दो ध्यानों को (परिवज्जंतो) छोड़ता हुआ (गुत्तो) तीन गुप्तियाँ सहित मैं (रक्खामि महव्वए पंच) पांच महाव्रतों का रक्षण और पालन करता हूं । (दुविहं चरित्तधम्मं) देशविरति और सर्वविरति रूप दो प्रकार के चारित्रधर्म को तथा (दुन्नि अ झाणाइं धम्मसुक्काइं) धर्म और शुक्ल इन दो प्रकार के ध्यानों को (उवसंपन्नो) प्राप्त हुआ (जुत्तो) साधुगुण युक्त मैं (रक्खामि महव्वए पंच) पांच महाव्रतों का रक्षण एवं पालन करता हूं ॥ २२–२३ ॥

१ दुःख के निमित्त या उसमें होनेवाले सन्ताप को, मनोज्ञ वस्तु के वियोग एवं अमनोज्ञ वस्तु के संयोग से चित्त में होनेवाले घबराहट को, और मोहवश राज्य का उपभोग, शयन, आसन, वाहन, स्त्री, गन्ध, माला, मणि तथा रत्नमय आभूषणों में होनेवाली उत्कट अभिलाषा को ' आर्त्तध्यान ' कहते हैं ।

२ हिंसा, झूंठ, चोरी, धनरक्षण विषयक अतिक्रूर परिणाम को, हिंसादि के लिये प्राणियों को रुलानेवाले व्यापार की चिन्ता को और छेदना, भेदना, काटना, वध करना, प्रहार करना, दमन करना, आदि कार्यों में सदा राग बने रहने को 'रौद्र-ध्यान ' कहते हैं ।

३ श्रुत और चारित्र धर्म में आन्तरिक लगन होने को, सूत्रार्थ एवं महाव्रतों की यथावत् साधना, बन्ध, मोक्ष, गति, आगति के हेतुओं की गहरी विचारणा को, इन्द्रिय विषय विकारों की निवृत्ति और प्राणी मात्र में दया की प्रवृत्ति होने को तथा भग-वान् एवं साधु के गुणों की प्रशंसा, विनय, नम्रता, अभिनमन करने को 'धर्मध्यान' कहते हैं ।

४ श्रुत के आधार से मन की अत्यन्त स्थिरता होने को, योगों का निरोध कर लेने को, विषय सम्बन्ध रहने पर भी वैराग्य बल से चित्त को विषय विरक्त बना लेने को, और शरीर का छेदन भेदन होने पर भी चित्त की स्थिरता को लेश मात्र भी चलविचल नहीं होने देने को ' शुक्लध्यान ' कहते हैं ।

चत्तारि य सुहसिज्जा, चउविहं संवरं समाहिं च ।
उवसंपन्नो जुत्तो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—(चत्तारि य दुहसिज्जा) जिनेन्द्र-शासन में आत्मीय विश्वास-श्रद्धा न होना १, कामभोगों की वांछा रखना २, दूसरों को लाभ मिलता देख, उसे खुद को मिलने की आशा रखना ३, तथा देश या सर्व स्नान की इच्छा करना ४, इन चार दुःखदायी शय्याओं को, (चउरो सन्ना तहा कसाया य) चार आहारादि संज्ञाओं और क्रोधादि चार कषायों को (परिवज्जंतो गुत्तो) परिवर्जन करता हुआ त्रिगुप्तियों से गुप्त हो मैं (रक्खामि महव्वए पंच) पांच महाव्रतों का रक्षण तथा पालन करता हूं ।

(चत्तारि य सुहसिज्जा) और १ सर्वज्ञ भाषित मार्ग पर अटूट श्रद्धा होना, २ कामभोगों से विरक्त रहना, ३ परलाभ को लेने की इच्छा न करना, तथा ४ छोटे या बड़े स्नान की वांछा न करना, इन चार सुख शय्याओं को, (चउव्विहं संवरं) पापकर्म से मन को रोकना और पुण्यकर्म में मन को प्रवृत्त करना मनसंवर १, अशुभ वचन व्यवहार से वचन को रोकना तथा शुभ व्यापार में उसको लगाना वचन-संवर २, हिंसादि कार्य से काया को रोकना तथा दयाजनक शुभ कार्य में काया को जोड़ना काय-संवर ३, और महामूल्य वस्त्र, सुवर्णादि का त्याग करना उपकरण-संवर ४, इन चार संवरों को, (उवसंपन्नो जुत्तो) प्राप्त करता हुआ साधुगुण युक्त मैं (रक्खामि महव्वए पंच) पांच महाव्रतों का रक्षण और पालन करता हूं ॥ २७-२८ ॥

पंचेव य कामगुणे, पंचेव य अण्हवे महादोसे ।
परिवज्जंतो गुत्तो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ २९ ॥

पंचिंदियसंवरणं, तहेव पंचविहमेव सज्झाइं ।
उवसंपन्नो जुत्तो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—(पंचेव य कामगुणे) शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श रूप कामभोगों को और (पंचेव य अण्हवे महादोसे) प्राणातिपात १, मृषावाद २,

(छव्विहमब्भिंतरयं) १ प्रायश्चित्त, २ विनय, ३ वैयावृत्त्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान, ६ उत्सर्ग–कायोत्सर्ग, इन छः आभ्यन्तर तपों को, और (बज्झंपि य छव्विहं तवोकम्मं) १ अनशन, २ ऊनोदरी, ३ वृत्तिसंक्षेप, ४ रसत्याग, ५ कायक्लेश, ६ संलीनता, इन छः प्रकार के बाह्य तपःकर्म को (उवसंपन्नो जुत्तो) आचरण करता हुआ, साधुगुण युक्त मैं (रक्खामि महव्वए पंच) पांच महाव्रतों का भलीभाँति रक्षण तथा पालन करता हूं ॥३२॥

सत्त भयठाणाइं, सत्तविहं चेव नाणविब्भंगं ।
परिवज्जंतो गुत्तो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—(सत्त भयठाणाइं) इहलोकभय[1] १, परलोकभय[2] २, आदानभय[3] ३, अकस्मात्–भय[4] ४, वेदनाभय[5] ५, मरणभय[6] ६, अपकीर्त्तिभय[7] ७ इन सात भयस्थानों को (सत्तविहं चेव नाणविब्भंगं) मिथ्यात्व सहित जो अवधिज्ञान होता है उसको ' विभंगज्ञान ' कहते हैं, जो अज्ञान स्वरूप है। इसके सात भेद हैं–१ इस भेदवाला मनुष्य पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा ऊर्ध्व दिशा में से किसी एक दिशा में ही लोक को देखता है और अन्य किसी दिशा में लोक नहीं है ऐसा मानता है। २ इस भेदवाला व्यक्ति पांचों दिशाओं में लोक को देखता है और एक ही दिशा में लोक है ऐसा कहनेवालों को मिथ्या मानता है। ३ इस भेदवाला व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रहसंचय तथा निशिभोजन का आचरण करते हुए जीवों को देखता है, पर उसके ज्ञानावरणीयादि कर्मबन्ध को नहीं देखता और कहता है कि क्रिया ही कर्म है। ४ इस भेदवाला बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों से हर तरह की क्रिया करते हुए देवों को देखता है और जीव पुद्गल रूप है, अन्य कुछ नहीं, ऐसा मानता है। ५ इस भेदवाला व्यक्ति पुद्गलों के सहाय से देवों को विविध क्रियाएँ करते हुए देखता है और कहता है कि जीव पुद्गल एक रूप है,

---

१ अपनी अपनी जातिवाले से भय होना जैसे–मनुष्य को मनुष्य से, तिर्यंच को तिर्यंच से, देव को देव से, तथा नारकी को नारकी से। २ परजातिवाले से भय होना–जैसे मनुष्य को तिर्यंच या देव से अथवा तिर्यंच को देव या मनुष्य से। ३ धनादि रक्षा के लिये चोर, डाकू, राजा आदि का डर लगना। ४ बाह्य कारण से अचानक डर पैदा होना। ५ रोगादि पीड़ा से डरना। ६ मरण से डरना। और ७ लोकनिन्दा का डर होना।

के लिये उपाश्रय की याचना करूंगा, परन्तु मैं स्वयं दूसरे साधु के याचित उपाश्रय में रहूंगा। ३ स्वावग्रह–मैं दूसरों के वास्ते उपाश्रय मांगूगा परन्तु अन्य साधु ग्रहित उपाश्रय में ठहरूंगा नहीं। ४ परावग्रह–मैं दूसरे साधु के लिये उपाश्रय नहीं मांगू, पर दूसरों के ग्रहित उपाश्रय में ठहरूंगा। ५ स्वकीयावग्रह–खुद के लिये ही उपाश्रय याचूंगा, दूसरे साधु के लिये नहीं। ६ सागारिकसंस्तारकावग्रह–जिस का उपाश्रय होगा उसीके शय्या, संस्तारकादि वापरूंगा, अगर नहीं मिलेगा तो सारी रात उत्कटासन से बैठे बैठे बिताऊंगा। ७ यथासंघटितावग्रह–उपाश्रय की आज्ञा देनेवाले से शय्या संस्तारकादि अमुक प्रमाणवाले ही ग्रहण करूंगा, अधिक नहीं।

महाध्ययनसप्तैकक–१ स्थानसप्तैकक, २ नैषेधिसप्तैकक, ३ उच्चारप्रश्रवणविधिसप्तैकक, ४ शब्दसप्तैकक, ५ रूपसप्तैकक, ६ परक्रियासप्तैकक, ७ अन्योन्यक्रियासप्तैकक, ये सात अध्ययन आचाराङ्गसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध की दूसरी चूलिका रूप हैं जो सप्तैकक कहाते हैं। १ पुण्डरीक, २ क्रियास्थान, ३ आहारपरिज्ञा, ४ प्रत्याख्यानक्रिया, ५ अनाचारश्रुत, ६ आर्द्रकुमारीय, ७ नालन्दीय, ये सात अध्ययन सूत्रकृताङ्गसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में हैं, जो महाध्ययन कहाते हैं॥ ३४॥

अट्ठ मयट्ठाणाइं, अट्ठय कम्माइं तेसिं बंधं च।
परिवज्जंतो गुत्तो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ ३५॥

शब्दार्थ—(अट्ठ मयट्ठाणाइं) १ जाति, २ कुल, ३ बल, ४ रूप, ५ तप, ६ ऐश्वर्य, ७ श्रुत, ८ लाभ, इन आठ मदस्थानों को, तथा (अट्ठ य कम्माइं) १ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ नाम, ६ गोत्र, ७ अन्तराय, ८ आयुष्य, इन आठ कर्मों को, (तेसिं बंधं च) और उनके नवीन बन्धनों को (परिवज्जंतो गुत्तो) त्याग करता हुआ गुप्तिवन्त मैं (रक्खामि महव्वए पंच) पांच महाव्रतों का रक्षण एवं पालन करता हूं।

अट्ठ य पवयणमाया, दिट्ठा अट्ठविह निट्ठियट्ठेहिं।
उवसंपन्नो जुत्तो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ ३६॥

शब्दार्थ—(अट्ठ य पवयणमाया) १ ईर्यासमिति, २ भाषासमिति,

का अच्छा लाभ लेते हैं, इसलिये क्रियानुष्ठान से उन्हीं कुलों में उत्पन्न होने की धारणा करना। ९ उत्तम कुलों में संयम साधना बराबर नहीं हो सकती, दरिद्र कुल में अच्छी होती है, अतएव तपः क्रियानुष्ठान से भवान्तर में दरिद्र कुल में जन्म धारण करने का पण करना।

मोहनीयकर्म के उदय से कामभोगों की पिपासा होने पर साधु, या साध्वी, श्रावक, या श्राविका अपने चित्त में संकल्प करे कि मेरी तप आदि से मुझे अमुक संयोग मिले उसको निदान-नियाणा कहते हैं। इनमें १-५ नियाणावाले जीव दुर्लभबोधि होते हैं, दीर्घकाल तक संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं। छट्ठा नियाणावाला जीव किल्बिषीदेव में जन्म लेता और मरकर अनेक जन्मों तक गूंगा, बधिर हो धर्म नहीं पा सकता। सातवें नियाणावाला जीव समकित पा सकता है, विरतिभाव नहीं पा सकता। आठवें नियाणावाला श्राद्धव्रत ले सकता है, पर साधुधर्म नहीं ले सकता। नववें नियाणावाला साधुधर्म अंगीकार कर सकता है परन्तु उसी भव में मोक्ष नहीं जा सकता, कालान्तर में वह मोक्ष पा सकता है।

नववंभचेरगुत्तो, दुनवविह वंभचेरपरिसुद्धं।
उवसंपन्नो जुत्तो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—(**नववंभचेरगुत्तो**) वसति-स्त्री, पशु और नपुंसक रहित अथवा देवी, मानुषी या तिर्यंच के वास रहित स्थान में रहना १, कथा-स्त्रियों की कथा-वार्ता नहीं करना और उनकी सभा में धर्मोपदेश नहीं देना २, निषद्या-स्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठना और स्त्री के उठ जाने बाद भी उस आसन पर एक मुहूर्त्त तक नहीं बैठना ३, इन्द्रिय-स्त्रियों के अंगोपांगों को नहीं देखना, अगर उन पर दृष्टि पड़ जाय तो उनका ध्यान नहीं करना ४, कुड्यन्तर-भित्ति के अन्तर में रह कर स्त्री के कामभोगादि के शब्द नहीं सुनना ५, पूर्वक्रीडित-पहले भोगे हुए भोगों का स्मरण नहीं करना ६, प्रणीत-विकारोत्पादक घृतपूर्ण स्निग्ध पक्वान्न या गरिष्ठ भोजन नहीं करना ७, अति मात्राहार-प्रमाण से अधिक या रूखा, सूखा आहार नहीं करना, अल्पाहारी होना ८, और विभूषणा-स्नान, उबटण, सुगन्धी तैल, अलङ्कार आदि से शरीर की शोभा नहीं करना ९, इन नौ ब्रह्मचर्य गुप्तियों को तथा

बराबर उनका विनय नहीं सांचवना, और १० संरक्षणोपघात–परिग्रह का त्याग करके भी वस्त्र, पात्र और शरीरादि पर मूर्च्छा–ममत्व रखना।

असंवर दशक–इन्द्रियों, योगों और उपकरणों की अशुभ प्रवृत्ति एवं वस्त्रादि के अप्रत्युपेक्षण को 'असंवर' कहते हैं। उनके दश भेद हैं–१ श्रोत्रेन्द्रिय, २ चक्षुरिन्द्रिय, ३ घ्राणेन्द्रिय, ४ रसनेन्द्रिय, ५ स्पर्शनेन्द्रिय, ६ मन, ७ वचन, ८ काया, इन आठ कर्मबन्ध को अशुभ व्यापार में प्रवृत्त करना तथा ९ उपकरण असंवर जो वस्त्रादि लेने योग्य न हों उन्हें लेना, बिखरे हुए उपकरणों को योंही पड़े रखना, उनकी बराबर पड़िलेहन नहीं करना। १० सूचीकुशाग्रअसंवर-सूची, कुशाग्र आदि आवश्यकता पड़ने पर गृहस्थों के घर से मांग कर लाये हों उनको वापिस नहीं देना, उनको जहाँ तहाँ पड़े रखना।

संक्लेशदशक-समाधि से संयम को पालन करते हुए साधु, साध्वियों के चित्तमें जिन कारणों से अशान्ति पैदा होती है उसे 'संक्लेश' कहते हैं जिसके भेद दस हैं। १ उपधिसं०–वस्त्र पात्र आदि के लिये न मिलने की चिन्ता होना। २ उपाश्रयसं०–उपाश्रय, धर्मशाला या वसति न मिलने की चिन्ता होना। ३ कषायसं–क्रोधादि कषायों के कारण चित्त में अशान्ति होना। ४ भक्तपानसं०–आहार, पानी, अनुकूल न मिलने से अशान्ति रहना। ५–७ मन वचन कायसं०– मन, वचन और काया से चित्त में किसी प्रकार की अशान्ति होना। ८–१० ज्ञान दर्शन चारित्रसं०–ज्ञान, दर्शन और चारित्र में किसी तरह की अशुद्धता हो जाना।

सच्चसमाहिट्ठाणा, दस चेव दसाओ समणधम्मं च।
उवसंपन्नो जुत्तो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—(सच्च) दश प्रकार के सत्यों को (समाहिठाणा) तथा दश प्रकार के समाधिस्थानों को (दस चेव दसाओ) कर्मविपाकदशा १, उपासकदशा २, अन्तकृद्दशा ३, अनुत्तरोपपातिक दशा ४, आचारदशा ५, प्रश्नव्याकरणदशा ६, बन्धदशा ७, द्विगृद्धिदशा ८, दीर्घदशा ९, और संक्षेपिकदशा १०, इन दशाश्रुतस्कन्धसूत्र के दश अधिकारों को (च) और (समणधम्मं

शब्दार्थ—(तिगुणं एक्कारसं) ग्यारह के त्रिगुणा तेंतीस (आसायणं च सव्वं) सर्व आशातनाओं को (विवज्जंतो) टालता हुआ (परिवज्जंतो) अनाशातना भाव को प्राप्त हुआ (गुत्तो) साधुगुण युक्त मैं (महव्वए पंच) पांच महाव्रतों का (रक्खामि) रक्षण एवं पालन करता हूं। गुरुदेव की तेंतीस और अरिहन्त, सिद्ध आदि की तेंतीस आशातनाएँ स्वरूप सहित श्रमणसूत्र–पगाम सज्झाय में लिखी जा चुकी हैं, उनको वहीं पर सूत्रार्थ से समझ लेना चाहिये।

एवं तिदंडविरओ, तिगरणसुद्धो तिसल्लनीसल्लो।
तिविहेण पडिक्कंतो, रक्खामि महव्वए पंच ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—(एवं) इस प्रमाणे (तिदंडविरओ) मन, वचन, काया रूप तीन दण्डों से विराम पाया, (तिगरणसुद्धो) कृत, कारित, अनुमोदित रूप तीन करणों से विशुद्ध हुआ (तिसल्लनीसल्लो) तीन शल्यों से रहित हुआ और (तिविहेण पडिक्कंतो) मन, वचन, काया रूप त्रिविध योगों से-सर्व अतिचार दोषों से निवृत्ति पाया हुआ मैं (महव्वए पंच) पांच महाव्रतों का (रक्खामि) भलीभांति से रक्षण एवं पालन करता हूं।

इच्चेयं महव्वय उच्चारणं कयं थिरत्तं सल्लुद्धरणं धिइबलयं ववसाओ साहणट्ठो पावनिवारणं निकायणा भावविसोही पडागाहरणं निज्जुहणाऽऽराहणा गुणाणं संवरजोगो पसत्थज्झाणोवउत्तया जुत्तया य नाणे परमट्ठो उत्तमट्ठो, एस खलु तित्थंकरेहिं रइरागदोसमहणेहिं देसिओ पवयणस्स सारो छज्जीवनिकायसंजमं उवएसिअं तेल्लोक्कसक्कयं ठाणं अब्भुवगया।

शब्दार्थः—(इच्चेयं महव्वय उच्चारणं) इस प्रकार से (कयं) किया हुआ महाव्रतों का उच्चारण–अंगीकरण (थिरत्तं) संयम धर्म में स्थिरता रखानेवाला है, (सल्लुद्धरणं) शल्यों का नाश करनेवाला है, (धिइबलयं) चित्त को समाधि और बल देनेवाला है, (ववसाओ) कठिन से कठिन कार्यों में उत्तीर्ण होने का साहस बंधानेवाला है, (साहणट्ठो) मोक्ष को साधन करने

ज्ञान के धारक और अप्रमेय–जिसको छद्मस्थ नहीं जान सके, उसको भी जानने-वाले हे भगवन्! (नमोत्थु ते) आपको भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक नमस्कार हो। (महइ) मोक्ष में ही मति रखनेवाले, (महावीर) रागादि अन्तरंग दुश्मनों को हटा कर विजय पानेवाले, तपोवीर्य संपन्न और कर्मों को विदीर्ण करनेवाले महावीर, (वद्धमाणसामिस्स) ज्ञानादि समृद्धि के हेतुभूत हे वर्धमान प्रभो! (नमोत्थु ते) आपको नमस्कार हो। (अरहओ) अशोकादि आठ महा प्रातिहार्यों से पूजनीय हे अर्हन्! (नमोत्थु ते) आपको नमस्कार हो और (भगवओ) आप समग्र ऐश्वर्य, लोकोत्तर रूप, निर्मल यश, ज्ञानादि लक्ष्मी, अनुत्तर धर्म तथा प्रयत्नवान् हैं। इसलिये (त्तिकट्टु) आपको हे भगवन्! तीन वार या वारम्वार नमस्कार हो। मैंने (एसा खलु महव्वयउच्चारणा कया) निश्चय से इन महाव्रतों का उच्चारण किया–अंगीकार किये। (सुत्तकित्तणं काउं) अब सूत्रों का कीर्त्तन करने के लिये (इच्छामो) अभिलाषा रखता हूं–सूत्रस्तवना करना चाहता हूं।

श्रुत–सूत्र दो प्रकार का है–अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य। श्रीगणधरभगवन्तों के गुम्फित सूत्र अङ्गप्रविष्ट और श्रुतस्थविर भगवन्तों के रचित सूत्र अङ्गबाह्य कहाते हैं। इनमें पहला नियत और दूसरा अनियत है। अङ्गबाह्य श्रुत भी दो प्रकार का है–आवश्यक और आवश्यक–व्यतिरिक्त। उनमें यहाँ प्रथम अल्प रूप से आवश्यक-श्रुत बताया जाता है।

नमो तेसिं खमासमणाणं, जेहिं इमं वाइयं छव्विहमावस्सयं भगवंतं, तं जहा–सामाइयं चउवीसत्थओ वंदणयं पडिक्कमणं काउस्सग्गो पच्चक्खाणं। सव्वेहिं पि एयम्मि छव्विहे आवस्सए भगवंते ससुत्ते सअत्थे सगंथे सनिज्जुत्तिए ससंगहणिए जे गुणा वा भावा वा अरिहंतेहिं भगवंतेहिं पन्नत्ता वा परूविया वा, ते भावे सद्दहामो पत्तियामो रोएमो फासेमो पालेमो अणुपालेमो।

शब्दार्थ—(तेसिं खमासमणाणं) उन क्षमादि गुण युक्त महा-

शब्दार्थ—(ते भावे) उन भावों-पदार्थों को (सद्दहंतेहिं) दृढ़ विश्वास रखते हुए, (पत्तियंतेहिं) प्रीति से अंगीकार करते हुए, (रोयंतेहिं) आत्मा में रुचाते हुए, (फासंतेहिं) सेवा से स्पर्श करते हुए, (पालंतेहिं) पुनः पुनः पालन (अणुपालंतेहिं) जीवन पर्यन्त पालन करते हुए (अंतोपक्खस्स) एक पक्ष के अन्दर हमने (जं वाइयं) जो कुछ वांचन किया, कराया हो (पढियं) पढ़ा, पढ़ाया हो (परियट्टियं) परावर्तन-बार बार पढ़ कर याद किया हो (पुच्छियं) समाधान के लिये पूछ परछ की हो, (अणुपेहियं) भूल जाने के भय से मनन किया हो, (अणुपालियं) सर्व प्रकार से शुद्ध अनुष्ठान किया हो, (तं दुक्खक्खयाए) वह समस्त शारीरिक और मानसिक दुःखों के क्षय के लिये (कम्मक्खयाए) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के विनाश के लिये (मोक्खाए) मोक्ष प्राप्ति के लिये (बोहिलाभाए) भवान्तर में सद्धर्म की प्राप्ति के और (संसारुत्तारणाए) संसार का पार पाने के लिये होगा (त्ति कट्टु) इस कारण से (उवसंपज्जित्ताणं) उनको अंगीकार करके (विहरामि) मासकल्पादि मर्यादा से हम विचरेंगे।

अंतोपक्खस्स जं न वाइयं, न पढियं, न परियट्टियं, न पुच्छियं, नाणुपेहियं, नाणुपालियं, संते बले संते वीरिए, संते पुरिसकारपरक्कमे, तस्स आलोएमो, पडिक्कमामो, निंदामो, गरिहामो, विउट्टेमो, विसोहेमो, अकरणयाए, अब्भुट्ठेमो, अहारिहं तवोकम्मं, पायच्छित्तं, पडिवज्जामो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

शब्दार्थ—(अंतोपक्खस्स) पक्ष-पखवाड़ीया में हमने (जं न वाइयं) जो न वांचा हो नहीं वंचाया हो, (न पढ़ियं) न पढ़ा हो या न पढ़ाया हो, (न परियट्टियं) परावर्त्तन न किया हो, (न पुच्छियं) शंका होने पर नहीं पूछा हो, (नाणुपेहियं) चिन्तवन न किया हो, (नाणुपालियं) अनुष्ठान नहीं किया हो, (संते बले) शारीरिक बल रहते, (संते वीरिए) आत्मवीर्य रहते (संते पुरिसक्कारपरक्कमे) अभिमान रूप पराक्रम रहते भी वाचनादि उद्यम न किया हो (तस्स) उन सर्व का हम (आलोएमो)

सुअं, वीअरायसुअं, विहारकप्पो, आउरपच्चक्खाणं, महा-पच्चक्खाणं।

शब्दार्थ—(नमो तेसिं खमासमणाणं) उन क्षमाश्रमणों–सूत्रार्थदाता गुरुदेवों को नमस्कार हो (जेहिं) जिन्होंने (इमं अंगबाहिरं) ये अङ्ग-बाह्य (उक्कालिअं) उत्कालिकश्रुत (भगवंतं) गंभीरार्थवाला (वाइयं) हमको दिया। (तं जहा) वे इस प्रकार हैं-(दसवेआलियं) १ दश-वैकालिक, (कप्पिआकप्पिअं) २ कल्प्याकल्प्य, (चुल्लकप्पसुअं) ३ क्षुल्लकल्पश्रुत (महाकप्पसुअं) ४ महाकल्पश्रुत, (ओवाइअं) ५ औप-पातिक, (रायप्पसेणिअं) ६ राजप्रश्नीय, (जीवाभिगमो) ७ जीवाभिगम, (पण्णवणा) ८ प्रज्ञापना, (महापण्णवणा) ९ महाप्रज्ञापना (नंदी) १० नन्दी, (अणुओगदाराइं) ११ अनुयोगद्वार, (देविंदत्थओ) १२ देवेन्द्रस्तव, (तंदुलवेआलिअं) १३ तन्दुलवैचारिक, (चंदाविज्झयं) १४ चन्द्रावेध्यक, (पमायप्पमायं) १५ प्रमादाप्रमाद, (पोरिसिमंडलं) १६ पौरुषीमण्डल, (मंडलप्पवेसो) १७ मण्डलप्रवेश, (गणिविज्जा) १८ गणिविद्या, (विज्जाचरणविणिच्छओ) १९ विद्याचरणविनिश्चय, (झाणवि-भत्ती) २० ध्यानविभक्ति, (मरणविभत्ती) २१ मरणविभक्ति, (आय-विसोही) २२ आत्मविशुद्धि, (संलेहणासुअं) २३ संलेखनाश्रुत, (वीअ-रायसुअं) २४ वीतरागश्रुत, (विहारकप्पो) २५ विहारकल्प, (चरणविही) २६ चरणविधि, (आउरपचक्खाणं) २७ आतुरप्रत्याख्यान, और (महापचक्खाणं) २८ महाप्रत्याख्यान, इत्यादि अनेक उत्कालिकश्रुत जानना चाहिये।

सव्वेहिं पि एयम्मि अंगबाहिरे उक्कालिए भगवंते ससुत्ते, सअत्थे, सगंथे, सनिज्जुत्तिए, ससंगहणिए, जे गुणा वा भावा वा अरिहंतेहिं, भगवंतेहिं, पण्णत्ता वा परूविआ वा ते भावे सद्दहामो, पत्तिआमो, रोएमो, फासेमो, पालेमो, अणु-पालेमो। ते भावे सद्दहंतेहिं, पत्तिअंतेहिं, रोअंतेहिं, फासंतेहिं,

सुअं, वीअरायसुअं, विहारकप्पो, आउरपच्चक्खाणं, महा-पच्चक्खाणं।

शब्दार्थ—(नमो तेसिं खमासमणाणं) उन क्षमाश्रमणों-सूत्रार्थदाता गुरुदेवों को नमस्कार हो (जेहिं) जिन्होंने (इमं अंगबाहिरं) ये अङ्ग-बाह्य (उक्कालिअं) उत्कालिकश्रुत (भगवंतं) गंभीरार्थवाला (वाइयं) हमको दिया। (तं जहा) वे इस प्रकार हैं-(दसवेआलियं) १ दश-वैकालिक, (कप्पिआकप्पिअं) २ कल्प्याकल्प्य, (चुल्लकप्पसुअं) ३ क्षुल्लकल्पश्रुत (महाकप्पसुअं) ४ महाकल्पश्रुत, (ओवाइअं) ५ औप-पातिक, (रायप्पसेणिअं) ६ राजप्रश्नीय, (जीवाभिगमो) ७ जीवाभिगम, (पण्णवणा) ८ प्रज्ञापना, (महापण्णवणा) ९ महाप्रज्ञापना (नंदी) १० नन्दी, (अणुओगदाराइं) ११ अनुयोगद्वार, (देविंदत्थओ) १२ देवेन्द्रस्तव, (तंदुलवेआलिअं) १३ तन्दुलवैचारिक, (चंदाविज्झयं) १४ चन्द्रावेध्यक, (पमायप्पमायं) १५ प्रमादाप्रमाद, (पोरिसिमंडलं) १६ पौरुषीमण्डल, (मंडलप्पवेसो) १७ मण्डलप्रवेश, (गणिविज्जा) १८ गणिविद्या, (विज्जाचरणविणिच्छओ) १९ विद्याचरणविनिश्चय, (झाणवि-भत्ती) २० ध्यानविभक्ति, (मरणविभत्ती) २१ मरणविभक्ति, (आय-विसोही) २२ आत्मविशुद्धि, (संलेहणासुअं) २३ संलेखनाश्रुत, (वीअ-रायसुअं) २४ वीतरागश्रुत, (विहारकप्पो) २५ विहारकल्प, (चरणविही) २६ चरणविधि, (आउरपच्चक्खाणं) २७ आतुरप्रत्याख्यान, और (महापच्चक्खाणं) २८ महाप्रत्याख्यान, इत्यादि अनेक उत्कालिकश्रुत जानना चाहिये।

सव्वेहिं पि एयम्मि अंगबाहिरे उक्कालिए भगवंते ससुत्ते, सअत्थे, सगंथे, सनिज्जुत्तिए, ससंगहणिए, जे गुणा वा भावा वा अरिहंतेहिं, भगवंतेहिं, पण्णत्ता वा परूविआ वा ते भावे सद्दहामो, पत्तिआमो, रोएमो, फासेमो, पालेमो, अणु-पालेमो। ते भावे सद्दहंतेहिं, पत्तिअंतेहिं, रोअंतेहिं, फासंतेहिं,

पालंतेहिं, अणुपालंतेहिं, अंतोपक्खस्स जं वाइअं पढिअं, परि-अट्टिअं, पुच्छिअं, अणुपेहिअं, अणुपालिअं, तं दुक्खक्खयाए, कम्मक्खयाए, मोक्खाए, बोहिलाभाए, संसारुत्तारणाए त्ति कट्टु उवसंपज्जित्ताणं विहरामि। अंतोपक्खस्स जं न वाइअं, न पढिअं, न परिअट्टिअं, न पुच्छिअं, नाणुपेहिअं, नाणुपालिअं, संते बले, संते वीरिए, संते पुरिसकारपरक्कमे, तस्स आलोएमो, पडिक्कमामो, निंदामो, गरिहामो, विउट्टेमो, विसोहेमो, अक-रणयाए अब्भुट्ठेमो, अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडि-वज्जामो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थः—(एवमेव पि एयम्मि अंगबाहिरे उक्कालिए) इसी प्रकार अंगबाह्य उत्कालिकश्रुत इत्यादि सारे पाठ का अर्थ पहले लिखे गये परावश्यक के आलापक के समान समझना। इस प्रकार उत्कालिक-श्रुत कहा।

णमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइअं अंगबाहिरं कालिअं भगवंतं, तं जहा—उत्तरज्झयणाइं, दसाओ, कप्पो, ववहारो, इसिभासिआइं, निसीहं, महानिसीहं, जंबुद्दीवपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, चंदपन्नत्ती, दीवसागरपन्नत्ती, खुड्डियाविमाणपवि-भत्ती, महल्लियाविमाणपविभत्ती, अंगचूलिआए, वग्गचूलि-आए, विवाहचूलिआए, अरुणोववाए, वरुणोववाए, गरुलोव-वाए, धरणोववाए, वेसमणोववाए, वेलंधरोववाए, देविंदो-ववाए, उट्ठाणसुए, समुट्ठाणसुए, नागपरिआवलिआणं, निरया-वलिआणं, कप्पिआणं, कप्पवडिंसयाणं, पुप्फिआणं, पुप्फ-

चूलिआणं, वण्हिदसाणं[1], आसीविसभावणाणं, दिट्ठीविसभावणाणं, चारणभावणाणं, महासुमिणभावणाणं, तेअग्गिनिसग्गाणं।

शब्दार्थ—(नमो तेसिं खमासमणाणं) क्षमाश्रमणादि उन महापुरुषों को नमस्कार हो (जेहिं इमं अंगबाहिरं) जिन्होंने यह अंगबाह्य (भगवंतं) अतिशयादि गुणवाला (कालिअं) कालिकश्रुत (वाइअं) हमको दिया है। (तं जहा) वह इस प्रकार है-(उत्तरज्झयणाइं) १ उत्तराध्ययन, (दसाओ) २ दशाश्रुतस्कन्ध, (कप्पो) ३ बृहत्कल्प, (ववहारो) ४ व्यवहार कल्प, (इसिभासिआइं) ५ ऋषिभाषित, (निसीहं) ६ निशीथ, (महानिसीहं) ७ महानिशीथ, (जंबुद्दीवपन्नत्ती) ८ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, (सूरपन्नत्ती) ९ सूर्यप्रज्ञप्ति, (चंदपन्नत्ती) १० चन्द्रप्रज्ञप्ति, (दीवसागरपन्नत्ती) ११ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, (खुड्डिआविमाणपविभत्ती) १२ क्षुद्रकाविमानप्रविभक्ति, (महल्लिआविमाणपविभत्ती) १३ महतीविमानप्रविभक्ति, (अंगचूलिआए) १४ अंगचूलिका, (वग्गचूलिआए) १५ वर्गचूलिका, (विवाहचूलिआए) १६ विवाहचूलिका, (अरुणोववाए) १७ अरुणोपपात, (वरुणोववाए) १८ वरुणोपपात, (गरुलोववाए) १९ गरुडोपपात, (धरणोववाए) २० धरणोपपात, (वेसमणोववाए) २१ वैश्रमणोपपात, (वेलंधरोववाए) २२ वेलन्धरोपपात, (देविंदोववाए) २३ देवेन्द्रोपपात, (उट्ठाणसुए) २४ उत्थानश्रुत, (समुट्ठाणसुए) २५ समुत्थानश्रुत, (नागपरिण्णावलिआणं) २६ नागपरिज्ञावलिका, (निरयावलिआणं-कप्पियाणं) २७ निरयावलिका-कल्पिका, (कप्पवडिंसयाणं) २८ कल्पावतंसक, (पुप्फिआणं) २९ पुष्पिता, (पुप्फचूलिआणं) ३० पुष्पचूलिका, (वण्हिदसाणं) ३१ वृष्णिदशा (आसीविसभावणाणं) ३२ आशीविषभावना, (दिट्ठीविसभावणाणं) ३३ दृष्टिविषभावना, (चारणभावणाणं) ३४ चारणभावना, (महासुमिणभावणाणं) ३५ महास्वप्नभावना, और (तेअग्गिनिसग्गाणं) ३६ तेजसनिसर्ग, इत्यादि कालिकश्रुत जानना। ये अध्ययन-प्रकीर्णक स्वरूप हैं। भगवान श्रीऋषभदेवस्वामी के समय चौराशी हजार,

[1] 'वण्हिदसाणं' पद पर टीका, अवचूरि या भाषान्तर में नहीं होने से अर्थ नहीं किया।

अजितनाथादि बाईस जिनेश्वरों के समय में संख्याता हजार और श्रीमहावीर-स्वामी के समय में चौदह हजार प्रकीर्णक सूत्र थे।

सव्वेहिं पि एयम्मि अंगबाहिरे कालिए भगवंते, ससुत्ते, सअत्थे, सगंथे, सनिज्जुत्तिए, ससंगहणिए, जे गुणा वा भावा वा अरिहंतेहिं भगवंतेहिं, पन्नत्ता वा परूविआ वा, ते भावे सद्दहामो, पत्तिआमो, रोएमो, फासेमो, पालेमो, अणुपालेमो। ते भावे सद्दहंतेहिं, पत्तिअंतेहिं, रोयंतेहिं, फासंतेहिं, पालंतेहिं, अणुपालंतेहिं, अंतोपक्खस्स जं वाइयं, पढिअं, परियट्टियं, पुच्छिअं, अणुपेहिअं, अणुपालिअं, तं दुक्खक्खयाए, कम्मक्खयाए, मोक्खाए, बोहिलाभाए, संसारुत्तारणाए त्ति कट्टु उवसंपज्जित्ताणं विहरामि। अंतोपक्खस्स जं न वाइअं न पढिअं न परियट्टिअं, न पुच्छिअं, नाणुपेहिअं, नाणुपालिअं, संते बले, संते वीरिए, संते पुरिसक्कारपरक्कमे, तस्स आलोएमो, पडिक्कमामो, निंदामो, गरिहामो, विउट्टेमो, विसोहेमो, अकरणयाए, अब्भुट्ठेमो अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जामो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थ—(नमो तेसिं खमासमणाणं) उन क्षमाश्रमण महापुरुषों को नमस्कार हो (जेहिं) जिन्होंने (इमं) इस (गणिपिडगं) गणिपिटक-गणधरगुम्फित अर्थसार से भरे भाजन स्वरूप (भगवंतं) अतिशयादि उत्तम गुण युक्त (दुवालसंगं) द्वादशाङ्ग (वाइअं) हमको दिया। (तं जहा) वह इस प्रकार कि (आयारो) १ आचाराङ्ग, (सूयगडो) २ सूत्रकृताङ्ग, (ठाणं) ३ स्थानाङ्ग, (समवाओ) ४ समवायाङ्ग, (विवाहपन्नत्ती) ५ विवाहप्रज्ञप्ति–भगवतीसूत्राङ्ग, (नायाधम्मकहाओ) ६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, (उवासगदसाओ) ७ उपासकदशाङ्ग, (अंतगडदसाओ) ८ अन्तकृद्दशाङ्ग, (अणुत्तरोववाइअदसाओ) ९ अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग, (पण्हावागरणं) १० प्रश्नव्याकरणाङ्ग, (विवागसुयं) ११ विपाकश्रुताङ्ग, और (दिट्ठिवाओ) १२ दृष्टिवादाङ्ग।

सव्वेहिं पि एयम्मि दुवालसंगे गणिपिडगे भगवंते ससुत्ते, सअत्थे, सगंथे, सनिज्जुत्तिए, ससंगहणिए, जे गुणा वा भावा वा अरिहंतेहिं भगवंतेहिं पन्नत्ता वा परूविआ वा, ते भावे सद्दहामो, पत्तिआमो, रोएमो, फासेमो, पालेमो, अणुपालेमो, ते भावे सद्दहंतेहिं, पत्तिअंतेहिं, रोयंतेहिं, फासंतेहिं, पालंतेहिं, अणुपालंतेहिं, अंतोपक्खस्स जं वाइअं, पढिअं, परियट्टिअं, पुच्छिअं, अणुपेहिअं, अणुपालिअं, तं दुक्खक्खयाए, कम्मक्खयाए, मोक्खाए, बोहिलाभाए, संसारुत्तारणाए, त्ति कट्टु उवसंपज्जित्ता णं विहरामि। अंतोपक्खस्स जं न वाइअं न पढिअं, न परियट्टिअं न पुच्छिअं, नाणुपेहिअं, नाणुपालिअं संते बले, संते वीरिए, संते पुरिसक्कारपरक्कमे, तस्स आलोएमो, पडिक्कमामो, निंदामो, गरिहामो, विउट्टेमो, विसोहेमो, अकरणयाए, अब्भुट्ठेमो, अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जामो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(सव्वेहिं पि एयम्मि दुवालसंगे गणिपिडगे) समग्र इस द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक में, इत्यादि पाठ का अर्थ षडावश्यक के आलापक में लिखे अनुसार जानना।

नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइअं दुवालसंगं गणिपिडगं भगवंतं सम्मं काएण फासंति पालंति पूरंति तीरंति किट्टंति सम्मं आणाए आराहंति अहं च नाराहेमि तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थः—(तेसिं खमासमणाणं) उन क्षमाश्रमण–क्षमादि गुणों से शोभित गुरु आदि को (नमो) नमस्कार हो (जेहिं) जिन्होंने (गणिपिडगं) सारमय रत्नवत् अर्थों से भरी हुई पेटी स्वरूप तथा (भगवंतं) समग्र ऐश्वर्यादि अतिशयवाला (इमं दुवालसंगं) ये द्वादशाङ्गश्रुत (वाइअं) हमको दिया (सम्मं काएण) इस द्वादशाङ्गश्रुत को सच्चे भाव से काया से (फासंति) स्पर्श करते हैं– इसे ग्रहण करते हैं, (पालंति) बार बार अभ्यास द्वारा इसका रक्षण करते हैं, (पूरंति) परिपूर्ण करते हैं, (तीरंति) पूरे [illegible] पर्यंत पार लगाते हैं, (किट्टंति) इसकी प्रशंसा [illegible] करते हैं और (सम्मं आणाए) इसमें दिखलाई हुई आज्ञाओं का (आराहंति) [illegible] करते हैं तथा (अहं च) मैं (नाराहेमि) इसकी [illegible] आराधना नहीं करता, इसलिये (तस्स) इस आशातना [illegible] मेरा (दुक्कडं) दुष्कृत–पाप (मिच्छा) मिथ्या–निष्फल हो।

यहाँ श्रुताधिष्ठात्री देवी का अर्थ जिनेश्वर की 'वाणी' समझना चाहिये जो समग्र पापकर्मों से अलिप्त-रहित और कर्मक्षय करने में सर्व प्रकार से समर्थ है। व्यन्तरादि देवी विषयभोग, कषाय आदि पापकर्मों से स्वयं लिप्त है, अतः वह स्वपर के पापकर्मों का क्षय करने में असमर्थ है। यह शाश्वत सिद्धान्त भी है कि जो स्वयं कर्म-बद्ध है, वह दूसरों को बन्धन मुक्त नहीं कर सकता। जिनेश्वर की वाणी रूपी देवी अबद्ध है-कर्मबन्धन से मुक्त है। इसलिये वही श्रुतसागर के आराधक प्राणियों के ज्ञानावरणीय कर्म समूहों का सर्वनाश करने में समर्थ मानी जा सकती है। संपूर्ण शुभ अनुष्ठान जिनेश्वर-वाणी में ही निहित हैं ऐसी शास्त्रीय मान्यता है। जैनसंस्कृति के अनुसार जिनवाणी ही सरस्वती है। 'जिनागम उसका मूर्तिरूप है। 'खंडहरों का वैभव' जैनपुरातत्त्व पृष्ठ ४१।

खामणा (क्षमापना) सूत्र।

इच्छामि खमासमणो अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतरपक्खियं[1] खामेउं, पन्नरसण्हं[2] दिवसाणं पन्नरसण्हं राइयाणं जं किंचि अपत्तियं परपत्तियं भत्ते पाणे विणए वेयावच्चे आलावे संलावे उच्चासणे समासणे अंतरभासाए उवरिभासाए जं किंचि मज्झ विणयपरिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह अहं न याणामि तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

शब्दार्थः—(खमासमणो) हे क्षमाश्रमण-गुरो! (अब्भिंतरपक्खियं) पखवाडीया-एक पक्ष में उत्पन्न हुए अपराधों को (खामेउं) खमाने-माफी मांगने के लिये (इच्छामि) मैं चाहता हूं-(अब्भुट्ठिओमि) उनको खमाने के वास्ते खड़ा हुआ हूं। (पन्नरसण्हं दिवसाणं) पन्द्रह दिवसों में और (पन्नरसण्हं राइयाणं) पन्द्रह रात्रिओं में (जं किंचि) जो कुछ सामान्य या विशेष रूप से (अपत्तियं) अप्रीति उत्पन्न करनेवाला तथा (परप-

---

१. चतुर्मासिक-प्रतिक्रमण में 'चउमासियं' और सांवत्सरिक में 'संवच्छरियं' पद कहना।
२. चतुर्मासिक-प्रतिक्रमण में 'चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं दुगसयवीसइ राइंदियाणं' और सांवत्सरिक में 'बारसण्हं मासाणं चउवीसइ पक्खाणं तिन्निसयसट्ठि राइंदियाणं' पाठ बोलना।

त्तियं) दूसरों के निमित्त अप्रीति पैदा करनेवाला अपराध (भत्ते पाणे) भोजन और पानी के विषय में (विणए वेयावच्चे) विनय तथा औषधादि वैयावृत्य–सेवा करने में, (आलावे) एक बार बोलने में (संलावे) बार बार वार्तालाप करने में, (उच्चासणे) आपसे अधिक ऊंचे आसन पर बैठने में (समासणे) आपके बराबरी के आसन पर बैठने में (अंतरभासाए) आपके भाषण या वार्तालाप करने के बीच में बोलने और (उवरिभासाए) आपके बोलने के उपरान्त अधिक बोलने में (जं किंचि) जो कुछ अपराध (मज्झ) मेरा (सुहुमं वा) छोटा अथवा (बायरं वा) बड़ा, अथवा (विणयपरिहीणं) विनय रहित - अनुचित हुआ हो, उसको (तुब्भे जाणह) आप जानते हो (अहं न याणामि) मैं नहीं जानता (तस्स मिच्छा मि दुक्कडं) वह अपराध सम्बन्धी मेरा पाप मिथ्या–निष्फल हो।

भोजन, पानी, विनय, सेवा, आलाप, संलाप, बैठने और [illegible] आदि में अनुचित व्यवहार या अपराध हो गया हो, उस पाप का मैं [illegible] देता हूं–उस पाप को निष्फल मानता हूं। गुरु कहते हैं [illegible] तुमसे मैं भी तुमको खमाता हूं।

पाक्षिक-खामणा-सूत्र।

१–इच्छामि खमासमणो पियं च मे जं भे हट्ठाणं तुट्ठाणं अप्पायंकाणं अभग्गजोगाणं सुसीलाणं सुव्वयाणं सायरिय-उवज्झायाणं नाणेणं दंसणेणं चरित्तेणं तवसा अप्पाणं भावे-माणाणं बहुसुभेण भे दिवसो पोसहो पक्खो वइक्कंतो, अन्नो य भे कल्लाणेणं पज्जुवट्ठिओ सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि।
' तुब्भेहिं समं ' ।

करता हूं। गुरु वाक्य है कि (नित्थारगपारगा होह) संसार रूप महा-अरण्य से पार होकर सदा शाश्वत अक्षय्य सुख-धाम को शीघ्र प्राप्त करो।

कृतिकर्म, आचार, विनय, शिक्षा, गुरूपदिष्ट मार्ग-प्रवृत्ति और गुरुप्रेरणा आदि सब मेरे लिये अति आत्म हितकर है और उन्हीं से मेरा संसार का अन्त होगा। इसीलिये मैं त्रिधा भक्ति पूर्वक आपको वन्दना करता हूं। गुरु आशीर्वाद देते हैं कि संसार अरण्य से पार होकर तुम भी मोक्ष सुख-धाम को पाओ।

---

८ गौचरी सम्बन्धी सैंतालीस दोष।

उद्‌गम दोष—

अहाकम्मुद्देसिय, पूइकम्मे य मीसजाए य।
ठवणा पाहुडियाए, पाओअर कीय पामिच्चे ॥ १ ॥
परियट्टिए अभिहडे, उब्भिन्ने मालोहडे य।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे ॥ २ ॥

१ आधाकर्मदोष-साधु, साध्वी के वास्ते सचित्त को अचित्त करना अथवा अचित्त को पका कर देना।

२ औद्देशिकदोष-साधु, साध्वी के उद्देश से पहिले तैयार किये हुए आहार (भोजन) आदि को गुड़, खांड, दही वगैरह से स्वादिष्ट करना।

३ पूतिकर्मदोष-साधु, साध्वी के वास्ते शुद्ध आहार आदि को आधा-कर्मदोष से मिश्रित करना।

४ मिश्रजातदोष-अपने वास्ते और साधु, साध्वी के वास्ते प्रथम ही धारणा करके आहार आदि बनाना।

५ स्थापनादोष-साधु, साध्वी को देने के वास्ते खीर, दूध, दही, भोजन आदि जुदे भाजन में रख छोड़ना।

६ प्राभृतिकादोष-विवाह या करियावल आदि का अवसर न होने

घर भी साधु साध्वियों को आये जान कर उनको व्होराने के निमित्त विवाह, या [illegible] आदि करना।

७ प्रादुष्करणदोष-अँधारे में रक्खी हुई आहारादि वस्तु को दीपक, ढेबरी आदि का प्रकाश कर खोज कर साधु, साध्वी को देना।

८ क्रीतदोष-साधु, साध्वी के वास्ते बाजार से, ग्रामान्तर से, या किसी के घर से बेचाती लाकर कोई वस्तु देना।

९ प्रामित्यकदोष-दूसरों के यहाँ से उधार लाकर साधु, साध्वी को आहार आदि वस्तु व्होराना-देना।

१० परावर्त्तितदोष-अपनी वस्तु को दूसरों के साथ अदला-बदली करके साधु, साध्वी को देना।

११ अभिहृतदोष-साधु, साध्वी के सामने कोई भी वस्तु सामने लाकर अथवा उनके निवासस्थान पर लाकर देना।

१२ उद्भिन्नदोष-साधु, साध्वी को व्होराने के वास्ते घड़े, या कोठी आदि के मुख पर से माटी वगैरह अलग करना, अथवा ताला, या ढक्कन आदि खोलना।

१३ मालापहृतदोष-सीढ़ी, नीसरनी अथवा [illegible] आदि लाकर साधु, साध्वी को अर्पण करना।

१४ आच्छेद्यदोष-किसी की वस्तु छीन कर, [illegible] साधु, साध्वी को लाकर देना।

उत्पादना दोष—

धाई दूइ निमित्ते, आजीव वणीमगे चिगिच्छा य ।
कोहे माणे माया, लोभे य हवंति दस एए ॥ ३ ॥
पुव्विंपच्छासंथव, विज्जा मंते य चुन्न जोगे य ।
उप्पायणाइ दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य ॥ ४ ॥

१ धात्रीपिण्डदोष–गृहस्थों के बालक, बालिका को दूध पिलाना, स्नान कराना, शृङ्गार कराना और रमाना इत्यादि कर्म कर आहारादि लेना ।

२ दूतीपिण्डदोष–दूत, या दूती के समान समाचार कह करके आहार आदि वस्तु ग्रहण करना ।

३ निमित्तपिण्डदोष–भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल सम्बन्धी फलों के दर्शक १ भौम, २ उत्पात, ३ स्वप्न, ४ आन्तरिक्ष, ५ अङ्गस्फुरण, ६ स्वर, ७ लक्षण, ८ व्यंजन, इन आठ निमित्तशास्त्रों के आधार से भला, या बुरा फल प्रकाश कर अथवा बतला कर आहारादि वस्तु ग्रहण करना ।

भूमि–कम्पन से शुभाऽशुभ जान लेने की विद्या १, ताराओं के गिरने, आकाश से अंगारेसे पड़ने से अच्छा, या अनिष्ट फल जान लेने की विद्या २, स्वप्नों के कारण उनका भला बुरा फल जान लेने की विद्या ३, ग्रहों के पारस्परिक युद्ध, भेद और युति का फल बतानेवाली विद्या ४, शारीरिक अङ्गोपाङ्ग फरकने से फल दिखानेवाली विद्या ५, शृगालादि पशु और पंखियों के बोलने से उत्तम, या अधम फल बतानेवाली विद्या ६, छत्र, चामर, धनुष आदि शारीरिक चिह्नों से शुभाऽशुभ फल दिखानेवाली विद्या ७, तथा मषा, तिलक आदि से उत्तम, या अधम फल समझानेवाली विद्या ८, क्रमशः भौमादि निमित्त विद्या कहलाती हैं । यही ८ निमित्त–शास्त्र हैं ।

४ आजीवपिण्डदोष–अपने जाति, कुल, कर्म, शिल्प आदि का उत्कर्ष दिखला कर, या उनको प्रकाश कर आहारादि ग्रहण करना ।

५ वनीपकपिण्डदोष–अपनी दीनता, या गरीबी दिखला कर अथवा मैं तुम्हारे साधुओं का भक्त हूं ऐसा कह कर उनके ब्राह्मणादि भक्तों से आहारादि वस्तु के लिये याचना करना ।

६ चिकित्सापिण्डदोष-विविध प्रकार की औषधी बता कर, अथवा रोगादि की दवा कर आहारादि वस्तु लेना।

७ क्रोधपिण्डदोष-अपना विद्याप्रभाव, तपःप्रभाव, राजमान्यतादिक दिखलाना, या तुम ब्राह्मणादि को देते हो, मेरे को नहीं देते। अतः तुम्हारा बिगाड़ हो जायगा इत्यादि शाप वचन बोल कर भिक्षा ग्रहण करना।

८ मानपिण्डदोष-मैं लब्धिवाला हूं तुम क्या नहीं जानते हो? या गृहस्थावस्था में मैं बड़ा हौदेदार, मालदार और ऊँचे कुल का था ऐसा प्रकाशित कर आहारादि ग्रहण करना।

९ मायापिण्डदोष-अलग अलग वेश तथा भाषा बदल कर आहार आदि वस्तु ग्रहण करना।

१० लोभपिण्डदोष-उत्तम भोजन आदि मिलने की लालसा से गृहस्थों के घर, हाट आदि में घूमते फिरना।

११ पूर्वपश्चात्संस्तवदोष-गृहस्थों के माता, पिता, सास, ससुर आदि की प्रशंसा कर अथवा अपना सम्बन्ध परिचय बता कर [illegible]

१२ विद्यापिण्डदोष-आहारादि ग्रहण करने के [illegible] अथवा चक्रवर्त्यादि रूप विद्या और इनकी [illegible]

१३ मंत्रपिण्डदोष-भिक्षा प्राप्त करने के [illegible] मंत्र और इनके साधन की विधि बताना।

१४ चूर्णपिण्डदोष-वशीकरण, मारण, उच्चाटन, [illegible] और इनकी विधि बता कर आहारादि वस्तु लेना।

(अविवाहित कुमारिका की योनि के समान योनि करने) तथा रक्षाबन्धन करने आदि के उपाय बता या सिखा कर आहारादि ग्रहण करना ।

ये सोलह दोष 'उत्पादनादोष' कहाते हैं जो आहारादि लेनेवाले साधु, साध्वी सम्बन्धी हैं । अतः आहार आदि वस्तु ग्रहण करते समय इन दोषों को टालने में साधु साध्वी को अवश्य सावधानी रखना चाहिये ।

एषणादोष—

संकिय मक्खिय निक्खित्त, पिहिय साहरिय दायगुम्मीसे ।
अपरिणय लित्त छड्डिय, एसणदोसा दस हवंति ॥ ५ ॥

१ शंकितदोष-आधाकर्मादि दोषों की शंका सहित आहारादि ग्रहण करना ।

२ म्रक्षितदोष-सचित्त पृथ्वीकाय आदि से, या मदिरादि निन्दनीय पदार्थों से संघट्टित (अड़ा हुआ) आहारादि वस्तु लेना ।

३ निक्षिप्तदोष-पृथ्वी, जल, अग्नि और वनस्पति आदि सचित्त वस्तुओं पर रक्खा हुआ आहारादि को ग्रहण करना ।

४ पिहितदोष-सचित्त-पृथ्वी, जल, अग्नि, वनस्पति आदि से ढँकी हुई आहारादि वस्तु को लेना ।

५ संहृतदोष-देने लायक पात्र में रक्खे हुए आहार आदि को दूसरे पात्र में लेकर साधु, साध्वी को देना ।

६ दायकदोष-आठ वर्ष से कम अवस्था वाला बालक, वृद्ध, मत्त (पागल), कंपमान (धूजता हुआ), ज्वरपीड़ित, नेत्रविकल (अन्धा, या कम देखनेवाला), गलत्कुष्ट (कोढ़िया), हाथ पैरों से छिन्न (लूला, लंगड़ा और पाँगला), बेड़ीवाला-कैदी, नपुंसक, सगर्भा, बालवत्सा (स्तनपान कराती हुई स्त्री) भोजन बनाती, दही बिलोवती, गेहुं बीनती, धान्य भूंजती, घट्टी पीसती, तन्दुलादि खांडती, चरखा फेरती, तिल आंवलादि बांटती, साग फलादि बनाती, लींपन लीपती, कपड़ा भाजन धोवती, षट्कायिक जीवों का विनाश करती तथा रोगग्रस्त, इत्यादि स्त्री पुरुषों के हाथ से आहारादि वस्तु ग्रहण करना ।

साहित्य नाम	मुद्रण सं०	पृष्ठाङ्क
३५ श्रीसिद्धाचल नवाणुं प्रकारी पूजा	१९९१	६४
३६ श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तुतिमाला (श्लोकबद्ध)	१९९१	२४
३७ श्रीयतीन्द्रविहार-दिग्दर्शन (तृतीय भाग)	१९९१	२०१
३८ श्रीराजेन्द्रसूरीश्वर अष्टप्रकारी पूजा	१९९१	३०
३९ श्रीयतीन्द्रविहार-दिग्दर्शन (चतुर्थ भाग)	१९९३	३१०
४० सविधि-स्नात्र पूजा (नवीन)	१९९३	२१
४१ मेरी नेमाड़ यात्रा (ऐतिहासिक)	१९९६	८४
४२ अक्षयनिधितपविधि, तथा पौषधविधि	१९९९	६४
४३ श्रीभाषण-सुधा (उपदेशक ७ व्याख्यान)	१९९९	६२
४४ श्रीयतीन्द्रप्रवचन-हिन्दी (प्रथम भाग)	२०००	२९०
४५ समाधानप्रदीप-हिन्दी (प्रथम भाग)	२०००	२७०
४६ सूक्तिरसलता (सिंदूरप्रकर का हिन्दी पद्यानुवाद)	२००१	
४७ मेरी गोड़वाड़ यात्रा (ऐतिहासिक)	२००१	१००
४८ प्रकरण चतुष्टय (जीवविचार, दण्डक, नवतत्त्व और लघुसंग्रहणी, इन चार प्रकरणों का अन्वयार्थ, भावार्थ)	२००५	२३१
४९ श्रीयतीन्द्रप्रवचन (गुजराती, द्वितीय भाग)	२००५	५०१
५० विंशतिस्थानकतपविधि (देववन्दन संयुत)	२००५	८२
५१ राइयदेवसियपडिकमण-हिन्दी शब्दार्थ	२००७	१७२
५२ सत्यसमर्थक-प्रश्नोत्तरी	२००९	४८
५३ साधुप्रतिक्रमणसूत्र-शब्दार्थ हिन्दी	२०११	
५४ साध्वीव्याख्यान-समीक्षा	२०१०	२६
५५ स्त्रीशिक्षा-प्रदर्शन (हिन्दी)	२०११	
५६ श्रीसत्पुरुषों के लक्षण ('तृष्णां छिन्धि' श्लोक की व्याख्या)	२०११	
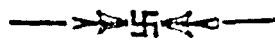
जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं।
न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ॥ २ ॥

एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—(जहा) जिस प्रकार (भमरो) भँवरा (दुमस्स) वृक्ष के (पुप्फेसु) फूलों के (रसं) रस को (आवियइ) थोड़ा थोड़ा पीता है (य) परन्तु (पुप्फं) फूल को (किलामेइ) पीड़ा (न) नहीं देता (य) और (सो) वह भँवरा (अप्पयं) अपनी आत्मा को (पीणेइ) तृप्त कर लेता है। (एमेए) इसी प्रकार (मुत्ता) बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित (जे) जो (लोए) ढाई द्वीप-समुद्र प्रमाण मनुष्य क्षेत्र में विचरनेवाले (समणा) महान् तपस्वी (साहुणो) साधु (संति) हैं, वे (पुप्फेसु) फूलों में (विहंगमा) भँवरा के (व) समान (दाणभत्तेसणे) गृहस्थों से मिले हुए आहार आदि की गवेषणा में (रया) रक्त-खुश हैं।

—जिस प्रकार भँवरा वृक्षों के फूलों का थोड़ा थोड़ा रस पीकर अपनी आत्मा को तृप्त कर लेता है, परन्तु फूलों को किसी तरह की तकलीफ नहीं देता। इसी प्रकार ढाई द्वीप समुद्र प्रमाण मनुष्य-क्षेत्र में विचरनेवाले परिग्रह त्यागी, तपस्वी, साधु, गृहस्थों के घरों से थोड़ा थोड़ा आहार आदि ग्रहण कर अपनी आत्मा को तृप्त कर लेते हैं, परन्तु किसीको तकलीफ नहीं पहुंचाते। उक्त दृष्टान्त में यह विशेषता है कि–भँवरा तो बिना दिये हुए ही सचित्त फूलों के रस को पीकर तृप्त होता है, परन्तु साधु तो गृहस्थों के दिये हुए, अचित्त और निर्दोष आहार आदि को लेकर अपनी आत्मा को तृप्त करते हैं। अतएव भँवरा से भी साधुओं में इतनी विशेषता है। यहाँ वृक्ष-पुष्प के समान गृहस्थों और भौंरे के समान साधुओं को समझना चाहिये।

---

१ धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, रूप्य, सुवर्ण, कुप्य, द्विपद, चतुष्पद; यह नौ प्रकार का बाह्य और मिथ्यात्व, पुंवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ; यह चौदह प्रकार का अभ्यन्तर परिग्रह है।

२ जंबूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकी खण्ड, कालोदधिसमुद्र और पुष्करार्द्धद्वीप का आधा भाग, इस ढाई द्वीप समुद्र प्रमाण क्षेत्र को 'मनुष्यक्षेत्र' कहते हैं।

शब्दार्थ—(**सो**) वह रहनेमी (**संजयाइ**) साध्वी (**तीसे**) राजिमती के (**सुभासिअं**) उत्तम (**वयणं**) वचनों को (**सोच्चा**) सुन करके (**जहा**) जैसे (**नागो**) हाथी (**अंकुसेण**) अंकुश से ठिकाने आता है, वैसे ही (**धम्मे**) संयम-धर्म में (**संपडिवाइओ**) स्थिर हो गया ।

—साध्वी राजिमती के उत्तम वचनों को सुन कर, अंकुश से जैसे हाथी ठिकाने आता है, वैसे ही रहनेमी संयम-धर्म में स्थिर हो गया ।

रहनेमिने राजिमती के उपदेश से भगवान् नेमनाथ स्वामी के पास आलोयणा ले कर निर्दोष चारित्र पालन करना शुरू किया-जिसके प्रभाव से उसने ज्ञानावरणीय आदि पापकर्मों का नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त किया । अन्त में वह अनन्त सुखराशी में लीन हुआ ।

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसोत्तमो 'त्ति बेमि ।'

शब्दार्थ—(**एवं**) पूर्वोक्त रीति से (**संबुद्धा**) बुद्धिमान् (**पंडिया**) वांतभोगों के सेवन से उत्पन्न दोषों को जाननेवाले (**पवियक्खणा**) पाप कर्म से डरनेवाले पुरुष (**करंति**) आचरण करते हैं, और (**भोगेसु**) वान्त भोगों से (**विणियट्टंति**) अलग होते हैं (**जहा**) जैसे (**से**) वह (**पुरिसोत्तमो**) रहनेमी वान्तभोगों से अलग हुआ । (**त्ति बेमि**) ऐसा मैं मेरी बुद्धि से नहीं कहता हूं, किन्तु महावीर स्वामी आदि के कथनानुसार कहता हूं ।

—जिस प्रकार पुरुषोत्तम रहनेमीने अपनी आत्मा को वान्तभोगों से हटा कर संयम-धर्म में स्थापित की और निर्वाणपद को प्राप्त किया । उसी प्रकार जो साधु विषयभोगों के तरफ गये हुए चित्त को पीछा खींच कर संयम-धर्म में स्थिर करेंगे, तो उनको भी रहनेमी के समान परमपद प्राप्त होवेगा ।

आशंका—अपने भाई की स्त्री के ऊपर विषयाभिलाष से सराग दृष्टि रखनेवाले रहनेमी को सूत्रकारने 'पुरुषोत्तम' क्यों कहा ?

लेना १, (कीयगडं) साधुओं के वास्ते खरीद कर लाये गये आहार आदि को लेना २, (नियागं) निमंत्रण मिले हुए घरों से ही आहार आदि लेना ३, (अभिहडाणि य) साधु को देने के वास्ते गृहस्थोंने स्व पर गाँव से मँगवाये हुए आहार आदि लेना ४, (राइभत्ते) दिवागृहित आदि रात्रिभोजन करना ५, (सिणाणे य) देशस्नान या सर्वस्नान करना ६, (गंधमल्ले) चूआ, चन्दन, इत्र आदि सुगंधी पदार्थ लगाना ७, पुष्पों की माला पहरना ८, (य) और (वीयणे) गर्मी हटाने के वास्ते ताड, खजूर, पत्र, कागद, वस्त्र आदि के बने हुए वींजने रखना, या वस्त्रांचलादि से पवन डालना ९,

संनिही गिहिमत्ते य, रायपिंडे किमिच्छए ।
संवाहणं दंतपहोयणा य, संपुच्छणं देहपलोयणा य ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—(संनिही) घी, गुड़, शक्कर, आदि को संग्रह करके रख छोड़ना १०, (गिहिमत्ते य) भोजन आदि में गृहस्थों के भाजन काम में लेना ११, (रायपिंडे) राजा के दिये हुए आहार आदि लेना १२, (किमिच्छए) क्या चाहते हो ? ऐसा कहनेवाले के घर से या दानशाला आदि से आहार आदि लेना १३, (संवाहणं) हाड़, मांस, चाम, रोम आदि को सुख पहुंचाने वाले तेल आदि लगाना १४, (दंतपहोयणा य) दाँतों को धोकर साफ रखना १५, (संपुच्छणं) गृहस्थों को शाता पूछना, या कुशल संबन्धी पत्र लिखना १६, (य) और (देहपलोयणा) काँच, जल, आदि में शरीर, मुख आदि की शोभा देखना १७,

अट्ठावए य नालीए, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—(अट्ठावए य) विलायती चोपड़ खेलना १८, (नालीए) गंजीफा, सतरंज वगैरह जूआ खेलना १९, (छत्तस्स य धारणट्ठाए) रोगादि

१-रात्रि को लेना, रात्रि को खाना १, रात्रि को लेना, दिन में खाना २, दिन को लेना, रात्रि में खाना ३, दिन को लेना, दिन में खाना ४, इनमें शुरू के तीन भांगे त्याज्य और चौथा भाँगा शुद्ध है ।

लेना ३३, (सिंगबेरे य) कच्चा-सचित्त आदा लेना ३४, (उच्छुखंडे) सभी जाति की सेलड़ी, या उसके छीले हुए टुकड़े लेना ३५, (सचित्ते) सचित्त (कंदे मूले य) सकरकंद, गाजर, आलू, गोभी, आदि जमीकन्द लेना ३६, (आमए) सचित्त (फले) काकडी, आम, जामफल, आदि फल लेना ३७, (य) और (बीए) तिल, ऊंबी, ज्वार, चना आदि सचित्त बीज ग्रहण करना ३८,

सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमालोणे य आमए ।
सामुद्दे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—(आमए) सचित्त (सोवचले) संचल नमक लेना ३९, (सिंधवे) सचित्त सेंधा नमक लेना ४०, (लोणे) सचित्त साँभर नमक लेना ४१, (रोमालोणे य) सचित्त रोमक नामक नमक लेना ४२, (सामुद्दे) सचित्त समुद्रलोन लेना ४३, (पंसुखारे य) सचित्त पांशुक्षार लेना ४४, (आमए) सचित्त (कालालोणे य) काला नमक लेना ४५,

धुवणेत्ति वमणे य, वत्थीकम्म विरेयणे ।
अंजणे दंतवणे य, गाया भंगविभूसणे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—(धुवणेत्ति) वस्त्रों को धूप से धुपाना, या रोग शान्ति के वास्ते धूम्रपान करना ४६, (वमणे य) मदनफल आदि औषधी से वमन करना ४७, (वत्थीकम्म) स्नेहगुटिका वगैरह की अधोद्वार में पिचकारी लगवाना ४८, (विरेयणे) वारंवार जुलाब लेना ४९, (अंजणे) विना कारण नेत्रों में काजल, सुरमा, आदि लगाना ५०, (दंतवणे य) विना कारण दन्तमंजन, दाँतून वगैरह करना ५१, (गाया भंगविभूसणे) विना कारण तैल फुलेल आदि लगाना, या शोभा के निमित्त शरीर पर अलंकार आदि पहरना ५२,

सव्वमेयमणाइण्णं निग्गंथाण महेसिणं ।
संजमम्मि य जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं ॥ १० ॥

शब्दार्थ—(गिम्हेसु) उन्हाले में (आयावयंति) आतापना लेते हैं (हेमंतेसु) सियाले में (अवाउडा) उघाडे शरीर से रहते हैं (वासासु) वर्षा में (पडिसंलीणा) एक जगह रह कर संवरभाव में वरतते हैं, वे साधु (संजया) संयम पालने वाले, और (सुसमाहिया) ज्ञानादि गुणों की रक्षा करने वाले हैं।

—वही साधु अपने संयमधर्म और ज्ञानादि गुणों की सुरक्षा कर सकते हैं, जो उन्हाले में आतापना लेते, सियाले में उघाड़े शरीर रहते, और वर्षा में एक जगह मुकाम करके इन्द्रियों को अपने आधीन रखते हों।

परीसहरिउदंता, धूअमोहा जिइंदिया।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—(परीसहरिउदंता) परीषह रूप शत्रुओं को जीतने वाले (धूअमोहा) मोहकर्म को हटाने वाले (जिइंदिया) इन्द्रियों को जीतने वाले (महेसिणो) साधुलोग (सव्वदुक्खपहीणट्ठा) कर्मजन्य सभी दुःखों का नाश करने के वास्ते (पक्कमंति) उद्यम करते हैं।

—कर्मजन्य दुःखों को निर्मूल (नाश) करने का उद्यम वे ही साधु–महर्षी कर सकते हैं, जो बाईस परीसह रूप शत्रुओं को, मोह और पांचों इन्द्रियों के तेईस विषयों को जीतने वाले हों।

दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहेत्तु य।
केइऽत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झंति नीरया ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—(दुक्कराइं) अनाचार त्याग रूप अत्यन्त कठिन साध्वाचार

१–क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, अचेल, दंशमशक, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, दर्शन–ये २२ परीषह हैं।

२–स्पर्शनेन्द्रिय के शीत, उष्ण, रूक्ष, चीकना, खरदरा, कोमल, हलका, भारी, ये आठ। रसनेन्द्रिय के तीखा, कडुवा, कषायला, खट्टा, मीठा, ये पांच। घ्राणेन्द्रिय के सुगन्ध, दुर्गन्ध, ये दो। चक्षुरिन्द्रिय के श्वेत, नील, पीत, लाल, काला, ये पांच। श्रोत्रेन्द्रिय के सचित्त शब्द, अचित्त शब्द, मिश्रशब्द, ये तीन। ये सब मिलकर पांचों इन्द्रियों के २३ विषय हैं।

कर, उसकी रक्षा किये विना नहीं होता। इस संबन्ध से आये हुए चौथे अध्ययन में षड्जीवनिकाय और उसकी जयणा रखने का स्वरूप दिखाया जाता है—

सुअं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं इह खलु छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्झिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती।

शब्दार्थ—(**आउसंतेणं**) हे आयुष्यमन्! जम्बू! (**मे**) मैंने (**सुअं**) सुना (**भगवया**) भगवान्[1] ने (**एवं**) इस प्रकार (**अक्खायं**) कहा, कि (**इह**) इस दशवैकालिकसूत्र में तथा जैनशासन में (**खलु**) निश्चय से (**छज्जीवणिया णामज्झयणं**) षड्जीवनिका नामक अध्ययन को (**समणेणं**) महातपस्वी (**भगवया**) भगवान् (**कासवेणं**) काश्यपगोत्रीय (**महावीरेणं**) महावीरस्वामीने (**पवेइया**) केवलज्ञान से जान कर कहा, (**सुअक्खाया**) बारह पर्षदा में बैठ के भले प्रकार से कहा, (**सुपण्णत्ता**) खुद आचरण करके कहा; (**मे**) मेरी आत्मा को (**अज्झयणं**) यह अध्ययन (**अहिज्झिउं**) अभ्यास करने के लिये (**सेयं**) हितकर है और (**धम्मपन्नत्ती**) धर्मप्रज्ञप्ति रूप है।

—पंचम गणधर श्रीसुधर्मस्वामी अपने मुख्य शिष्य जम्बूस्वामी को फरमाते हैं कि हे आयुष्यमन्! यह षड्जीवनिका नामक अध्ययन काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान् महावीरस्वामीने समवसरण में बैठ कर बारह पर्षदा के सामने केवलज्ञान से समस्त वस्तुतत्त्व को अच्छी तरह देख कर प्ररूपण किया है। अतएव यह धर्मप्रज्ञप्ती रूप अध्ययन अभ्यास करने के लिये आत्म-हित कारक है।

कयरा खलु सा छज्जीवणिया णामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्झिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती ?

---

1 संपूर्ण ऐश्वर्य, संपूर्ण [illegible], संपूर्ण यशःकीर्ति, संपूर्ण शोभा, संपूर्ण ज्ञान और संपूर्ण वैराग्य; इन छः वस्तुओं के धारक पुरुष को '**भगवान्**' कहते हैं।

—सुधर्मस्वामी[1] फरमाते हैं कि–हे जम्बू ! धर्मप्रज्ञप्ति रूप और आत्म–हितकर आगे कहा जानेवाला वह षड्जीवनिका नामक अध्ययन, जो काश्यप–गोत्रीय श्रमण भगवान् श्री महावीरस्वामीने अलौकिक[2] प्रभाव से देख, बारह[3] पर्षदा में बैठ और स्वयं आचरण करके प्ररूपण किया है। वह इस प्रकार है—

पुढवीकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया।

शब्दार्थ—(पुढवीकाइया) पृथ्वी के जीव (आउकाइया) जल के जीव (तेउकाइया) अग्नि के जीव (वाउकाइया) हवा के जीव (वणस्सइकाइया) फल, फूल, पत्र, बीज, लता, कन्द, आदि वनस्पति के जीव (तसकाइया) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव।

पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। आउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। तेउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। वाउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएणं।

शब्दार्थ—(सत्थपरिणएणं) शस्त्र–परिणत पृथ्वी को छोड़ कर (अन्नत्थ) दूसरी (पुढवी) पृथ्वी (चित्तमंतं) जीव सहित (पुढोसत्ता)

---

1 कोल्लाग गाँव के धम्मिल ब्राह्मण की स्त्री भद्दिला के पुत्र, भगवान् के ग्यारह गणधरों में से पांचवें गणधर, जिन्होंने ५०० विद्यार्थियों के परिवार से अपापानगरीमें वीरप्रभु के पास दीक्षा ली, और जो ५० वर्ष गृहस्थ, ४२ वर्ष चारित्र (छद्मस्थ) तथा ८ वर्ष केवली पर्याय पालकर वीरनिर्वाण से बीसवें वर्ष मोक्ष गये।

२ हाथ की हथेली पर रक्खी हुई वस्तु के समान लोकाऽलोक गत पदार्थों के सूक्ष्म बादर भावों को केवलज्ञान से देखनेवाले।

३ अग्निकूण में गणधर आदि १, विमानवासी देवियां २, साध्वियाँ ३, नैऋतकूण में भवनपतिदेवियाँ ४, ज्योतिष्कदेवियां ५, व्यन्तरदेवियाँ ६, वायुकूण में भवनपतिदेव ७, ज्योतिष्क-देव ८, व्यन्तरदेव ९, ईशानकूण में वैमानिकदेव १०, मनुष्य ११, मनुष्यस्त्रियाँ १२; इन बारह प्रकार की पर्षदा में जिनेश्वर उपदेश देते हैं।

(सबीया) बीजों सहित (चित्तमंतं) सजीव (पुढोसत्ता) अंगुलाऽसंख्येय भाग प्रमाण अवगाहना में जुदे जुदे (अणेगजीवा) अनेक जीवोंवाली (अक्खाया) कही गई है (सत्थपरिणएणं) शस्त्र परिणत वनस्पति के विना (अन्नत्थ) दूसरी सभी वनस्पति सचित्त है ।

—सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेश्वर भगवान् महावीरस्वामीने पृथ्वी, अप्, अग्नि, वायु, इन चारों स्थावरों में अंगुल की असंख्यातवें भाग की अवगाहना में जुदे जुदे असंख्याता जीव और वनस्पतिकाय में असंख्याता तथा अनन्ता जीव प्ररूपण किये हैं। जो शस्त्रों से परिणत हो चुके हैं उनमें एक भी जीव नहीं, अर्थात् वे अचित्त (जीव रहित) हैं, ऐसा कहा है ।

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा । तं जहा—अंडया पोयया जराउया रसया संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया । जेसिं केसिं चि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइ गइ विण्णाया ।

शब्दार्थ—(से) अब (पुण) फिर (जे) जो (इमे) प्रत्यक्ष (अणेगे) द्वीन्द्रिय आदि भेदों में अनेक (बहवे) एक एक जाति में नाना भेदवाले (तसापाणा) त्रस जीव हैं । (तं जहा) वे इस प्रकार हैं—(अंडया) अंड से पैदा हुए पक्षी आदि (पोयया) पोत से पैदा हुए हाथी आदि (जराउया) गर्भ वेष्टन से पैदा हुए मनुष्य, गौ आदि (रसया) चलितरस में पैदा हुए जीव, (संसेइमा) जूं, लीख आदि (संमुच्छिमा) पुरुष-स्त्री के संयोग विना पैदा हुए पतंग आदि (उब्भिया) भूमि को फोड़ कर पैदा होनेवाले तीड़ आदि (उववाइया) देव, नारकी आदि (जेसिं) जिनमें (केसिं चि) कितने एक (पाणाणं) त्रसजीवों का (अभिक्कंतं) सामने आना (पडिक्कंतं) पीछा लौटना (संकुचियं) शरीर को भेला करना (पसारियं) शरीर को फैलाना (रुयं) बोलना (भंतं) भय से इधर उधर भागना (तसियं) दुःखी होना (पलाइयं) भागना (आगइ) आना (गइ) जाना इत्यादि क्रियाओं को (विण्णाया) जानने का स्वभाव है ।

काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसि-रामि ।

शब्दार्थ—(इच्चेसिं) ऊपर कहे हुए (छण्हं) छठवें (जीवनिका-याणं) त्रसकाय का (दंडं) संघट्टन, आतापन आदि हिंसा रूप दंड का (सयं) खुद (नेव समारंभिज्जा) आरंभ नहीं करे (अन्नेहिं) दूसरों के पास (दंडं) संघट्टन आदि (नेव समारंभाविज्जा) आरंभ नहीं करावे (दंडं) संघट्टन आदि (समारंभंते) आरंभ करते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणेज्जा) अच्छा नहीं समझे. ऐसा जिनेश्वरोंने कहा, इसलिये मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप आरंभ को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) नहीं करूं (न करा-वेमि) नहीं कराऊं (करंतं) करते हुए (अन्नं पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझूं (भंते) हे भगवन् ! (तस्स) भूत-काल में किये गये आरंभ का (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयण करूं (निंदामि) आत्म–साक्षी से निंदा करूं (गरिहामि) गुरु–साक्षि से गेर्हा करूं और (अप्पाणं) पाप कारी आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं ।

—जिनेश्वर फरमाते हैं कि साधु स्वयं त्रसकाय जीवों का संघट्टन, आतापन आदि आरंभ नहीं करे, दूसरों से नहीं करावे और करनेवालों को अच्छा भी नहीं समझे । जीवन पर्यन्त साधु यह प्रतिज्ञा करे कि—

त्रसकाय का आरंभ मैं नहीं करूंगा, दूसरों से नहीं कराऊंगा और करनेवालों का अनुमोदन भी नहीं करूंगा । और जो आरंभ हो चुका है उसकी आलोचना, निन्दा एवं गर्हा करके आरंभकारी आत्मा का त्याग करता हूं ।

पढमे भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते पाणाइवायं पच्चक्खामि । से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा, नेव सयं पाणे अइवाएज्जा, नेवऽन्नेहिं पाणे अइवा-

१ गर्हा-निंदा, घृणा, जुगुप्सा, ओघनिर्युक्तिटीकायाम् ।

साक्षी से गर्हा करूं (अप्पाणं) हिंसाकारी आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं (भंते) हे मुनीश ! (पढमे) पहले (महव्वए) महाव्रत में (सव्वाओ) समस्त (पाणाइवायाओ) त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा से (वेरमणं) अलग होने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हूं ।

अहावरे दोच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि । से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा, नेवऽन्नेहिं मुसं वायाविज्जा, मुसं वायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । दोच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ।

शब्दार्थः—(अह) इसके बाद (भंते !) हे मुनीन्द्र ! (अवरे) आगे के (दोच्चे) दूसरे (महव्वए) महाव्रत में (मुसावायाओ) असत्य भाषा से (विरमणं) दूर रहना भगवानने फरमाया है, अतएव (भंते) हे प्रभो ! (सव्वं) समस्त (मुसावायं) असत्य भाषण का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान करता हूं (से) वह (कोहा वा) क्रोध से (लोहा वा) लोभ से (भया वा) भय से (हासा वा) हास्य से (सयं) खुद (मुसं) असत्य (वइज्जा) बोले (नेव) नहीं, (अन्नेहिं) दूसरों के पास (मुसं) असत्य (वायाविज्जा) बोलावे (नेव) नहीं (मुसं) असत्य (वायंते) बोलते

---

१ यहाँ पर 'वा' शब्द एक एक के तज्जातीय भेदों को ग्रहण करने के वास्ते है । जैसे-सद्भावप्रतिषेध-आत्मा, पुन्य, पाप, स्वर्ग, मोक्ष नहीं है ऐसा बोलना १ । असद्भावोद्भावन-आत्मा श्यामाकतन्दुल प्रमाण या सर्वगत है ऐसी आगम विरुद्ध कल्पना करना २ । अर्थान्तर-हाथी को अश्व और अश्व को हाथी कहना ३ । गर्हा-काणे को काणा, अन्धे को अन्धा कहना ४ । ये असत्य के चार भेद हैं । क्रोधादि चारों में इनकी योजना स्वयं कर लेना चाहिये ।

से (वेरमणं) दूर होना जिनेश्वरोंने कहा है, अतएव (सव्व) सभी प्रकार की (अदिण्णादाणं) चोरी का (भंते) हे गुरो ! (पच्चक्खामि) मैं प्रत्याख्यान करता हूं (से) वह (गामे वा[1]) गाँव में (नगरे वा) नगर में (रण्णे वा) जंगल में (अप्पं वा) अल्पमूल्य–तृण आदि, (बहुं वा) बहुमूल्य–स्वर्ण आदि (अणुं वा) हीरा, मणि, पुखराज, आदि (थूलं वा) काष्ठ आदि (चित्तमंतं वा) सजीव बालक, बालिका आदि (अचित्तमंतं वा) अजीव–वस्त्र, आभूषण, आदि(अदिण्णं[2]) बिना दिये हुए (सयं) खुद (गिण्हिज्जा) ग्रहण करे (नेव) नहीं, (अन्नेहिं) दूसरों के पास (अदिण्णं) बिना दिये हुए को (गिण्हाविज्जा) ग्रहण करावे (नेव) नहीं, (अदिण्णं) बिना दिये हुए (गिण्हंते) ग्रहण करते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरोंने कहा है, इसलिये (जावज्जीवाए) जीवन पर्यंत मैं (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदन रूप त्रिविध अदत्तादान को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं)तीन योग से (न करेमि) नहीं करूं (न कारवेमि) नहीं कराऊं (करंतं) और अदत्त लेते हुए-(अन्नं पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझूं (भंते !) हे गुरो ! (तस्स) भूतकाल में किये गये अदत्तादान की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं (निंदामि) आत्म–साक्षी से निंदा करूं (गरिहामि) गुरु–साक्षी से गर्हा करूं (अप्पाणं) अदत्त लेनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं (भंते) हे प्रभो ! (तच्चे) तीसरे (महव्वए) महाव्रत में (सव्वाओ) समस्त (अदिण्णादाणाओ) अदत्तादान से (वेरमणं) अलग होने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हूं ।

अहावरे चउत्थे भंते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं सव्वं भंते ! मेहुणं पच्चक्खामि । से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवऽन्नेहिं मेहुणं सेवा-

---

१ 'वा' शब्द से गाँव, नगर और अल्पमूल्य, बहुमूल्य आदि वस्तुओं में तज्जातीय भेदों को ग्रहण करना चाहिये । २–यहाँ अदिण्णं से ग्राह्ययोग्य वस्तुओं बिना दी हुई न लेना यह [illegible] है । स्वर्ण, रत्न आदि तो साधुओं के अग्राह्य ही हैं, जो आगे दिखाया जायगा ।

(सव्वाओ) समस्त (मेहुणाओ) मैथुन सेवन से (वेरमणं) अलग होने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हूं ।

अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं सव्वं भंते ! परिग्गहं पच्चक्खामि । से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवऽन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हावेज्जा, परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । पंचमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ।

शब्दार्थः—(अह) इसके बाद (भंते) हे गुरो ! (अवरे) आगे के (पंचमे) पांचवें (महव्वए) महाव्रत में (परिग्गहाओ) नवविध परिग्रह से (वेरमणं) अलग होना जिनेश्वरोंने फरमाया है, अतएव (भंते !) हे कृपासागर ! (सव्वं) समस्त (परिग्गहं) परिग्रह का (पच्चक्खामि) मैं प्रत्याख्यान करता हूं (से) वह (अप्पं वा) अल्पमूल्य एरंड-काष्ठ आदि (बहुं वा) बहुमूल्य रत्न आदि (अणुं वा) आकार से छोटे हीरा आदि (थूलं वा) आकार से बड़े हाथी आदि (चित्तमंतं वा) सजीव-बालक, बालिका आदि (अचित्तमंतं वा) निर्जीव-वस्त्र, आभरण आदि (परिग्गहं) परिग्रह (सयं) खुद (परिगिण्हिज्जा) ग्रहण करे (नेव) नहीं (अन्नेहिं) दूसरों के पास (परिग्गहं) परिग्रह (परिगिण्हाविज्जा) ग्रहण करावे (नेव) नहीं, (परिग्गहं) परिग्रह (परिगिण्हंते) ग्रहण करते हुए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे

---

१ 'वा' शब्द से एरंडकाष्ठ, रत्न, सचित्त, अचित्त आदि के जुदे जुदे तज्जातीय सब भेद भी ग्रहण करना चाहिये ।

वा) आचारांगसूत्रोक्त उत्सेदिम आदि जल (खाइमं वा) खजूर आदि (साइमं वा) इलायची, लौंग, चूर्ण, आदि (सयं) खुद (राइं) रात्रि में (भुंजिज्जा) खावे (नेव) नहीं (अन्नेहिं) दूसरों को (राइं) रात्रिमें (भुंजाविज्जा) खवावे (नेव) नहीं, (राइं) रात्रि में (भुंजंते) खाते हूए (अन्ने वि) दूसरों को भी (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं, ऐसा जिनेश्वरोंने कहा। इसलिये (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त में (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप त्रिविध रात्रि-भोजन को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) नहीं करूं (न कारवेमि) नहीं कराऊं और (करंतं) करते हूए (अन्नं पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझूं (भंते !) हे भगवन् ! (तस्स) भूतकाल में किये गये रात्रि-भोजन की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं (निंदामि) आत्म-साक्षी से निंदा करूं (गरिहामि) गुरु-साक्षी से गर्हा करूं (अप्पाणं) रात्रि-भोजन करनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं (भंते !) हे प्रभो! (छट्ठे) छठवें (वए) व्रत में (सव्वाओ) समस्त (राइभोयणाओ) रात्रि-भोजन से (वेरमणं) अलग होने को (उवट्ठिओमि) उपस्थित हुआ हूं।

इच्चेयाइं पंचमहव्वयाइं राइभोयण वेरमण छट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।

शब्दार्थः—(इच्चेयाइं) इत्यादि ऊपर कहे हुए (पंचमहव्वयाइं) पांच महाव्रतों को (राइभोयणवेरमणछट्ठाइं) और छठवें रात्रि-भोजनविरमण व्रत को (अत्तहियट्ठयाए) आत्महित के लिये (उवसंपज्जित्ताणं) अंगीकार करके (विहरामि) संयमधर्म में विचरूं।

—श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामीने सभा के बीच में केवलज्ञान से समस्त वस्तु-तत्त्व को देख कर स्पष्ट रूप से कहा है कि साधु रात्रिभोजन सहित जीवहिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह; इन पांच आश्रवों को दुर्गतिदायक जान कर स्वयं आचरण न करे, दूसरों से आचरण न करावे और आचरण करनेवाले दूसरों को भी अच्छा नहीं समझे। इस प्रकार रात्रिभोजनविरमण सहित

शब्दार्थ—(से) पूर्वोक्त पंचमहाव्रतों के धारक (संजयविरयपडिहय·
च्चक्खायपावकम्मे) संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और
त्याख्यान से पापकर्मों को नष्ट करनेवाले (भिक्खू वा) साधु अथवा
भिक्खुणी वा) साध्वी (दिआ वा) दिवस में, अथवा (राओ वा)
ात्रि में, अथवा (एगओ वा) अकेले, अथवा (परिसागओ वा) सभा
में, अथवा (सुत्ते वा) सोते हुए, अथवा (जागरमाणे) जागते हुए (वा)
और भी कोई अवस्था में (से) पृथ्वीकायिक जीवों की जयणा इस प्रकार
करे कि-(पुढविं वा[1]) खान की मिट्टी (भित्तिं वा) नदीतट की मिट्टी
(सिलं वा) बड़ा पाषाण (लेलुं वा) पाषाण के टुकड़े (ससरक्खं वा
कायं) सचित्त रज से युक्त शरीर (ससरक्खं वा वत्थं) सचित्तरज से युक्त
वस्त्र, पात्र, इत्यादि पृथ्वीकायिक जीवों को (हत्थेण वा) हाथों से अथवा
(पाएण वा) पैरों से अथवा (कट्ठेण वा) काष्ठ से अथवा (किलिंचेण
वा) काष्ठ के टुकड़ों से अथवा (अंगुलियाए वा) अंगुलियों से अथवा
(सिलागाए वा) लोहा आदि के खीले से अथवा (सिलागहत्थेण)
खीला आदि के समूह से (वा) दूसरी और भी कोई तज्जातीय वस्तुओं से
(न आलिहिज्जा) एक वार खणे नहीं (न विलिहिज्जा) अनेक वार
खणे नहीं (न घट्टिज्जा) चलविचल करे नहीं (न भिंदिज्जा) छेदन
भेदन करे नहीं (अन्नं) दूसरों के पास (न आलिहावेज्जा) एक वार
खणावे नहीं (न विलिहावेज्जा) अनेक वार खणावे नहीं (न घट्टा·
विज्जा) चलविचल करावे नहीं (न भिंदाविज्जा) छेदन भेदन करावे नहीं
(अन्नं) दूसरों को (आलिहंतं वा) एक वार खणते हुए अथवा (विलि·
हंतं वा) अनेक वार खणते हुए अथवा (घट्टंतं वा) चल विचल करते हुए
अथवा (भिंदंतं वा) छेदन भेदन करते हुए (न समणुजाणेज्जा) अच्छा
समझे नहीं. ऐसा भगवानने कहा. अतएव (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त
(तिविहं) कृत, कारित अनुमोदित रूप पृथ्वीकाय संबन्धी त्रिविध हिंसा को

१ वा शब्द से खान आदि में तज्जातीय भेदों को भी ग्रहण करना । इसी तरह आगे के अलावाओं में भी अप्काय, तेजस्काय, वायु और वनस्पतिकाय के तज्जातीयभेदों को भी ग्रहण करना चाहिये ।

(भिक्खुणी वा) साध्वी (दिआ वा) दिवस में अथवा (राओ वा) रात्रि में (एगओ वा) अकेले अथवा (परिसागओ वा) सभा में अथवा (सुत्ते वा) सोते हुए अथवा (जागरमाणे) जागते हुए (वा) दूसरी और भी कोई अवस्था में (से) अप्कायिक-जीवों की जयणा इस प्रकार करे कि (उदगं वा) बावड़ी, कुआ आदि के जल (ओसं वा) ओस का जल (हिमं वा) बर्फ का जल (महियं वा) धूँअर का जल (करगं वा) ओरा का जल (हरितणुगं वा) वनस्पति पर रहे हुए जल के कण (सुद्धोदगं वा) बारीश का जल (उदउल्लं वा कायं) जल से भींजी हुई काया (उदउल्लं वा वत्थं) जल से भींजे हुए वस्त्र आदि (ससणिद्धं वा कायं) जलबिन्दु रहित भींजी हुई काया (ससणिद्धं वा वत्थं) जलबिन्दु रहित भींजे हुए वस्त्र आदि अप्काय को (न आमुसेज्जा) पूंछे नहीं (न संफुसेज्जा) छूए नहीं (न आवीलिआ) एक वार पीड़ा देवे नहीं (न पविलिज्जा) वार वार पीडा देवे नहीं (न अक्खोडिज्जा) एक वार झाटके नहीं (न पक्खो· डिज्जा) वार वार झाटके नहीं (न आयाविज्जा) एक वार तपावे नहीं (न पयाविज्जा) वार वार तपावे नहीं, (अन्नं) दूसरों के पास (न आमु· साविज्जा) पूंछावे नहीं (न संफुसाविज्जा) छुआवे नहीं (न आवीला· विज्जा) एक वार पीड़ा देवावे नहीं (न पवीलाविज्जा) वार वार पीड़ा देवावे नहीं (न अक्खोडाविज्जा) एक वार झटकावे नहीं (न पक्खोडा· विज्जा) वार वार झटकावे नहीं (न आयाविज्जा) एक वार तपवावे नहीं (न पयाविज्जा) वार वार तपवावे नहीं, (अन्नं) दूसरों को (आमुसंतं वा) पूंछते हुए, अथवा (संफुसंतं वा) छूते हुए अथवा (आवीलंतं वा) एक वार पीड़ा देते हुए, अथवा (पवीलंतं वा) वार वार पीड़ा देते हुए, अथवा (अक्खोडंतं वा) एक वार झाटकते हुए अथवा (पक्खोडंतं वा) वार वार झाटकते हुए, अथवा (आयावंतं वा) एक वार तपाते हुए, अथवा (पयावंतं वा) वार वार तपाते हुए (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं ऐसा भगवानने कहा, अतएव मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यंत (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप अप्कायिक त्रिविध हिंसा को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न

देते हुए, अथवा (वीयंतं) हवा डालते हुए, (वा) और तरह से भी वायु-काय का विनाश करते हुए (न समणुजाणेज्जा) अच्छा समझे नहीं ऐसा भगवानने कहा, अतएव मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविहं) कृत, कारित, अनुमोदित रूप वायुकायिक त्रिविध हिंसा को (मणेणं) मन (वायाए) वचन (काएणं) काया रूप (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) नहीं करूं (न कारवेमि) नहीं कराऊं (करंतं) करते हुए (अन्नं पि) दूसरों को भी (न समणुजाणामि) अच्छा नहीं समझूं (भंते !) हे भगवन् । (तस्स) भूतकाल में की गई हिंसा की (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण रूप आलोयणा करूं (निंदामि) आत्म-साक्षी से निंदा करूं (गरिहामि) गुरु-साक्षी से गर्हा करूं (अप्पाणं) वायुकाय की हिंसा करनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, से वीएसु वा वीयपइट्ठेसु वा रूढेसु वा रूढपइट्ठेसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्नपइट्ठेसु वा सच्चित्तेसु वा सच्चित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा, न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीएज्जा न तुअट्टेज्जा, अन्नं न गच्छावेज्जा न चिट्ठावेज्जा न निसीयावेज्जा न तुअट्टावेज्जा, अन्नं गच्छंतं वा चिट्ठंतं वा निसीयंतं वा तुअट्टंतं वा न समणुजाणेज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

शब्दार्थः—(से) पूर्वोक्त पंच महाव्रतों के धारक (संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और

रूपं आलोयणा करूं (निंदामि) आत्म-साक्षी से निंदा करूं (गरिहामि) गुरूसाक्षी से गर्हा करूं (अप्पाणं) वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाली आत्मा का (वोसिरामि) त्याग करूं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, से कीडं वा पयंगं वा कुंथुं वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहांसि वा कंबलंसि वा पायपुच्छणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जगंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए, तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणेज्जा नो णं संघायमावज्जेज्जा।

शब्दार्थ—(से) पूर्वोक्त पांच महाव्रतों के धारक (संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे) संयम युक्त, विविध तपस्याओं में लगे हुए और प्रत्याख्यान से पापकर्म को नष्ट करने वाले (भिक्खू वा) साधु, अथवा (भिक्खुणी वा) साध्वी (दिआ वा) दिवस में, अथवा (राओ वा) रात्रि में, अथवा (एगओ वा) अकेले, अथवा (परिसागओ वा) सभा में, अथवा (सुत्ते वा) सोते हुए, अथवा (जागरमाणे) जागते हुए, (वा) दूसरी और भी कोई अवस्था में (से) त्रसकायिक जीवों की रक्षा इस प्रकार करे कि (कीडं वा) कीट (पयंगं वा) पतंग (कुंथुं वा) कुन्थु (पिपीलियं वा) कीड़ी आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों को (हत्थंसि वा) हाथों पर अथवा (पायंसि वा) पैरों पर अथवा (बाहुंसि

---

१ 'वा' शब्द से सामान्य विशेष साधु साध्वी का ग्रहण करना। २ 'वा' शब्द से कीट, पतंग, कुन्थु, कीड़ी आदि में सभी जातियों को ग्रहण करना चाहिये

दूसरों से पालन कराऊंगा और पालन करनेवालों को अच्छा समझूंगा। षट्कायिक-जीवों की हिंसा खुद नहीं करूंगा, दूसरों के पास नहीं कराऊंगा और हिंसा करनेवालों को अच्छा नहीं समझूंगा। †भूतकाल में बिना उपयोग से जो हिंसा हो चुकी है उसकी आत्मा और गुरु की साख से निन्दा करता हूं और उस पाप करनेवाले-आत्म-परिणाम को हमेशां के लिये छोड़ता हूँ। यह प्रतिज्ञा एक दो दिन के लिये ही नहीं, किन्तु जीवित[3] पर्यन्त के लिये करता हूं।

दूसरे आत्मार्थी[4] मोक्षाभिलाषुक[5] साधु साध्वियों को भी उपरोक्त प्रकार से षट्कायिक जीवों की जयणा करते हुए ही संयम-धर्म में वरतना चाहिये। क्योंकि हर एक जीवों पर दया रखना यही पारमार्थिक[6] मार्ग है।

जयणा, और विहार आदि करने का उपदेश—

अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं ॥ १ ॥

शब्दार्थ—(अजयं) ईर्यासमिति को उल्लंघन करके (चरमाणो) गमन करता हुआ साधु (पाणभूयाइं) एकेन्द्रिय आदि जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (य) और (पावयं कम्मं) ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों को (बंधइ) बांधता है (से) उस (तं) पापकर्म का (कडुअं फलं) कडुआ फल (होइ) होता है।

अजयं चिट्ठमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं ॥ २ ॥

शब्दार्थ—(अजयं) ईर्यासमिति का उल्लंघन करके (चिट्ठमाणो) खड़ा रहता हुआ साधु (पाणभूयाइं) एकेन्द्रिय आदि जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (य) और (पावयं कम्मं) ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों

---

† दीक्षा लिये पहले के समय में।

१ जीव-स्वभाव। २ सदा के लिये। ३ जीता रहूं वहाँ तक। ४ संयम की चाह करनेवाले। ५ मोक्ष जाने की इच्छा रखनेवाले। ६ असली मोक्षमार्ग।

शब्दार्थ—मनुष्य (जया) जब (पुण्णं च) पुण्य और (पावं च) पाप (च) और (बंधं मोक्खं) बन्ध तथा मोक्ष आदि तत्त्वों को (जाणइ) जानता है (तया) तब वह (जे) जो (दिव्वे) देवसंबन्धी (जे) जो (माणुसे) मनुष्य संबन्धी (य) और तिर्यंच संबन्धी (भोए) भोग हैं, उनको (निव्विंदए) असार समझता है १६। मनुष्य (जया) जब (जे) जो (दिव्वे) देवसंबन्धी (जे) जो (माणुसे) मनुष्य संबन्धी (य) और तिर्यंच संबन्धी (भोए) भोग हैं, उनको (निव्विंदए) असार जानता है (तया) तब वह (सब्भिंतरं च) राग, द्वेष आदि अभ्यन्तर सहित (बाहिरं) पुत्र, कलत्र आदि बाह्य (संजोगं) संयोगों को (चयइ) छोड़ता है ॥ १७॥

—मनुष्य जब पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष आदि तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त होने से मनुष्य, देव, मानव और तिर्यंच संबन्धी भोगविलासों को तुच्छ समझता है। तब वह बाह्य और आभ्यन्तर संयोगों का त्याग करता है।

जया चयइ संजोगं, सब्भिंतरं च बाहिरं।
तया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं ॥ १८ ॥
जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—मनुष्य (जया) जब (सब्भिंतरं च) आभ्यन्तर सहित (बाहिरं) बाह्य (संजोगं) संयोगों को (चयइ) छोड़ता है (तया) तब वह (मुंडे) द्रव्य भाव से मुंडित (भवित्ताणं) हो करके (अणगारियं) साधुपन को (पव्वइए) अंगीकार करता है १८। (जया) जब (मुंडे) द्रव्य भाव से मुंडित (भवित्ताणं) हो करके (अणगारियं) साधुपन को (पव्वइए) अंगीकार करता है (तया) तब वह (संवरमुक्किट्ठं) उत्तम संवरभाव और (अणुत्तरं) सर्वोत्तम (धम्मं) जिनेन्द्रोक्त धर्म को (फासे) फरसता है ॥ १९॥

—आभ्यन्तर और बाह्य संयोगों का त्याग करने से मनुष्य, द्रव्यभाव से मुंडित होकर–दीक्षा लेकर साधु होता है और साधु होकर उत्तम संवर और सर्वोत्तम जिनेन्द्रोक्त धर्म को फरसता है। मतलब यह कि साधु होने बाद ही मनुष्य, उत्तम संवरभाव और धर्म को प्राप्त करता है।

(अलोगं) अलोक को (जाणइ) जानता है, (तया) तब (जोगे) मन, वचन, काय, इन तीन योगों को (निरुंभित्ता) रोक करके भवोपग्राही कर्मांशों के विनाशार्थ (सेलेसिं) शैलेशी अवस्था को (पडिवज्जइ) स्वीकार करता है ॥ २३ ॥

—लोकाऽलोक प्रकाशी या व्यापी केवलज्ञान और केवलदर्शन पैदा होने से मनुष्य चउदह राज प्रमाण लोक और अलोकाकाश को और उसमें रहे हुए समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् जानता और देखता है। चउदह राज प्रमाण लोक और अलोकाकाश को जानने, देखने बाद भवोपग्राही कर्मांशों का नाश करने के लिये केवलज्ञानी पुरुष मानसिक, वाचिक और कायिक योगों को रोक कर शैलेशी–निष्प्रकम्प अवस्था को धारण करता है।

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥ २४ ॥

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—मनुष्य (जया) जब (जोगे) मन वचन काया सम्बन्धी तीन योगों को (निरुंभित्ता) रोक करके (सेलेसिं) शैलेशी अवस्था को (पडिवज्जइ) स्वीकार करता है (तया) तब वह (कम्मं) भवोपग्राही कर्मों को (खवित्ताणं) खपा करके (नीरओ) कर्मरज से रहित हो (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) जाता है २४ । (जया) जब (कम्मं) कर्मों को (खवित्ताणं) खपा करके (नीरओ) कर्मरज से रहित हो पुरुष (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) जाता है (तया) तब (लोगमत्थयत्थो) लोक के ऊपर स्थित (सासओ) सदा शाश्वत (सिद्धो) सिद्ध (हवइ) होता है ॥२५॥

—योगों को रोक कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त करने से मनुष्य, भवोपग्राही कर्मरज से रहित होकर मोक्ष में विराजमान होता है और लोकोपरि सदा शाश्वत सिद्ध बन जाता है।

(अलोगं) अलोक को (जाणइ) जानता है, (तया) तब (जोगे) मन, वचन, काय, इन तीन योगों को (निरुंभित्ता) रोक करके भवोपग्राही कर्मांशों के विनाशार्थ (सेलेसिं) शैलेशी अवस्था को (पडिवज्जइ) स्वीकार करता है ॥ २३ ॥

—लोकाऽलोक प्रकाशी या व्यापी केवलज्ञान और केवलदर्शन पैदा होने से मनुष्य चउदह राज प्रमाण लोक और अलोकाकाश को और उसमें रहे हुए समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् जानता और देखता है। चउदह राज प्रमाण लोक और अलोकाकाश को जानने, देखने बाद भवोपग्राही कर्मांशों का नाश करने के लिये केवलज्ञानी पुरुष मानसिक, वाचिक और कायिक योगों को रोक कर शैलेशी–निष्प्रकम्प अवस्था को धारण करता है।

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥ २४ ॥

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—मनुष्य (जया) जब (जोगे) मन वचन काया सम्बन्धी तीन योगों को (निरुंभित्ता) रोक करके (सेलेसिं) शैलेशी अवस्था को (पडिवज्जइ) स्वीकार करता है (तया) तब वह (कम्मं) भवोपग्राही कर्मों को (खवित्ताणं) खपा करके (नीरओ) कर्मरज से रहित हो (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) जाता है २४। (जया) जब (कम्मं) कर्मों को (खवित्ताणं) खपा करके (नीरओ) कर्मरज से रहित हो पुरुष (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) जाता है (तया) तब (लोगमत्थयत्थो) लोक के ऊपर स्थित (सासओ) सदा शाश्वत (सिद्धो) सिद्ध (हवइ) होता है ॥२५॥

—योगों को रोक कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त करने से मनुष्य, भवोपग्राही कर्मरज से रहित होकर मोक्ष में विराजमान होता है और लोकोपरि सदा शाश्वत सिद्ध बन जाता है।

(अ) और (संजमो) सतरे प्रकार का संयम (अ) तथा (खंति) क्षमा (च) और (बंभचेरं) ब्रह्मचर्य (पिओ) प्रिय है (ते) वे पुरुष (पच्छा वि) अन्तिम अवस्था में भी (पयाया) संयम-मार्ग में विचरते हुए (अमर· भवणाइं) देवविमानों को (खिप्पं) जल्दी से (गच्छंति) पाते हैं ॥२८॥

—आखिरी (वृद्ध) अवस्था में भी जिन पुरुषों को तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है, वे संयममार्ग में बरतते हुए देवविमानों को अवश्य प्राप्त करते हैं। मतलब यह कि वृद्धावस्था में भी दीक्षा लेकर, उसको अच्छी रीति से पालन करनेवाला पुरुष देवगति में जरूर जाता है।

इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मद्दिट्ठि सया जए।
दुल्लहं लभित्तु सामण्णं, कम्मुणा न विराहिज्जासि त्ति बेमि॥२९॥

शब्दार्थ—(सया) निरन्तर (जए) जयणा रखते हुए (सम्मद्दिट्ठि) सम्यग्दृष्टि पुरुष (दुल्लहं) कठिनता से मिलनेवाले (सामण्णं) चारित्र को (लभित्तु) पा करके (इच्चेयं) इस प्रकार चौथे अध्ययन में कही गई (छज्जीवणियं) षट्कायिक जीवों की (कम्मुणा) मन, वचन, काय इन तीन योग संबन्धी अशुभ क्रिया से (न विराहिज्जासि) विराधना नहीं करे (त्ति) ऐसा (बेमि) मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थङ्कर आदि के उपदेश से कहता हूं॥ २९॥

—हमेशां जयणा से बरतनेवाले सम्यग्दृष्टि पुरुष अत्यन्त दुर्लभ चारित्र रत्न को पाकर चौथे अध्ययन में बतलाई हुई षड्जीवनिकाय संबन्धी जयणा की मन, वचन, काया से विराधना नहीं करे। आशय यह है कि-साधु अथवा साध्वी चौथे अध्ययन में कहे अनुसार पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इन षड्जीवनिकाय की जयणा खुद रक्खे, दूसरों के पास जयणा रखावे और जयणा रखनेवालों को मन, वचन, काय, इन तीन योगों से अच्छा समझे, लेकिन षड्जीवनिकाय की किसी प्रकार से विराधना नहीं करे।

आचार्य श्रीशय्यंभवस्वामी फरमाते हैं कि हे मनक! षड्जीवनिकाय का स्वरूप और उसकी जयणा रखने का उपदेश जैसा भगवान् श्रीमहावीरस्वामीने सुधर्मस्वामी को और सुधर्मस्वामीने अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को कहा, उसी प्रकार मैंने तुझको कहा है। समिति।

(अ) और (संजमो) सतरे प्रकार का संयम (अ) तथा (खंति) क्षमा (च) और (बंभचेरं) ब्रह्मचर्य (पिओ) प्रिय है (ते) वे पुरुप (पच्छा वि) अन्तिम अवस्था में भी (पयाया) संयम-मार्ग में विचरते हुए (अमर· भवणाइं) देवविमानों को (खिप्पं) जल्दी से (गच्छंति) पाते हैं ॥२८॥

—आखिरी (वृद्ध) अवस्था में भी जिन पुरुषों को तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है, वे संयममार्ग में वरतते हुए देवविमानों को अवश्य प्राप्त करते हैं। मतलब यह कि वृद्धावस्था में भी दीक्षा लेकर, उसको अच्छी रीति से पालन करनेवाला पुरुप देवगति में जरूर जाता है।

इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मद्दिट्ठि सया जए।
दुल्लहं लभित्तु सामण्णं, कम्मुणा न विराहिज्जासि त्ति बेमि ॥२९॥

शब्दार्थ—(सया) निरन्तर (जए) जयणा रखते हुए (सम्मद्दिट्ठि) सम्यग्दृष्टि पुरुप (दुल्लहं) कठिनता से मिलनेवाले (सामण्णं) चारित्र को (लभित्तु) पा करके (इच्चेयं) इस प्रकार चौथे अध्ययन में कही गई (छज्जीवणियं) षट्कायिक जीवों की (कम्मुणा) मन, वचन, काय इन तीन योग संबन्धी अशुभ क्रिया से (न विराहिज्जासि) विराधना नहीं करे (त्ति) ऐसा (बेमि) मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थङ्कर आदि के उपदेश से कहता हूं ॥ २९ ॥

—हमेशां जयणा से वरतनेवाले सम्यग्दृष्टि पुरुप अत्यन्त दुर्लभ चारित्र रत्न को पाकर चौथे अध्ययन में बतलाई हुई षड्जीवनिकाय संबन्धी जयणा की मन, वचन, काया से विराधना नहीं करे। आशय यह है कि-साधु अथवा साध्वी चौथे अध्ययन में कहे अनुसार पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इन षड्जीवनिकाय की जयणा खुद रक्खे, दूसरों के पास जयणा रखावे और जयणा रखनेवालों को मन, वचन, काय, इन तीन योगों से अच्छा समझे, लेकिन षड्जीवनिकाय की किसी प्रकार से विराधना नहीं करे।

आचार्य श्रीशय्यंभवस्वामी फरमाते हैं कि हे मनक ! षड्जीवनिकाय का स्वरूप और उसकी जयणा रखने का उपदेश जैसा भगवान् श्रीमहावीरस्वामीने सुधर्मस्वामी को और सुधर्मस्वामीने अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को कहा, उसी प्रकार मैंने तुझको कहा है। इमिति।

७-आचार्य, उपाध्याय और दीक्षा दायक गुरु बाहर से उपाश्रयादि में आवे, तब उनके कम्बल या वस्त्र खण्ड से पग पूंछ कर साफ करना, उनके हाथ में से दांडादि ले लेना। अगर उनको पेशाबादि की बाधा हो तो तद्योग्य व्यवस्था कर देना और बाधा टाले बाद उसको जयणा से परठ देना चाहिये।

८-आचार्यादि वड़ील साधु साध्वी किसी से बातचीत करते हों, उनके बीच में बोलना नहीं और वे एकान्त में किसीके साथ बात विचार करते हों वहाँ जाकर खड़े नहीं रहना, हितशिक्षा देने पर आचार्यादि के सामने बड़बड़ाट नहीं करना, किन्तु उनकी प्रदत्त शिक्षा को विनय से श्रवण करना चाहिये।

९-बारम्बार हाथ, पैर आदि को धोने और आरीसा में देख कर केशादि सम्भारने, या उनको जमा कर रखने से संयमधर्म में दोष लगता है, अतः साधु साध्वियों को अकारण हाथ पैरादि नहीं धोना चाहिये, अशुची की बात अलग है

१०-प्रतिक्रमण, सज्झाय, पड़िलेहण, स्थंडिलादि, गोचरी पानी लेने को जाते समय मार्ग में गमन करते हुए बातें नहीं करना, किन्तु इन क्रियाओं मौन और जयणा रखना चाहिये-जिससे अविधि (असंयम) न हो।

११-आहार पानी वापरने के पात्रों को जल से साफ धो कर औ वस्त्रखण्ड से अच्छी तरह पूंछ कर झोली में लपेट कर रखना, परन्तु उघाड़े न रखना चाहिये और उनको बार बार संभालते रहना चाहिये।

१२-जिस जमीन में आलास, पड़पड़ा, अधिक ढाल और फाट न हे जहाँ किसीको एतराज या अप्रीति न हो और जहाँ पानी पडते ही सूख जाय किन्तु डाबड़ के न भरे रहें। स्थण्डिल जाने या प्रश्रवणादि परठने के लिये ऐसी शुद्ध नीलोत्री रहित भूमि वापरना चाहिये।

इस प्रकार जो साधु साध्वी उक्त नियमों के साथ अपना संयमधर्म पा नहीं करते, वे दोषी हैं और वे दोष के फल स्वरूप आसुरी (किल्बि देवगति का बन्धन करते हैं।

——卐——

७-आचार्य, उपाध्याय और दीक्षा दायक गुरु बाहर से उपाश्रयादि में आवे, तब उनके कम्बल या वस्त्र खण्ड से पग पूंछ कर साफ करना, उनके हाथ में से दांडादि ले लेना। अगर उनको पेशाबादि की बाधा हो तो तद्‌योग्य व्यवस्था कर देना और बाधा टाले बाद उसको जयणा से परठ देना चाहिये।

८-आचार्यादि वड़ील साधु साध्वी किसी से बातचीत करते हों, उनके बीच में बोलना नहीं और वे एकान्त में किसीके साथ बात विचार करते हों वहाँ जाकर खड़े नहीं रहना, हितशिक्षा देने पर आचार्यादि के सामने बड़बड़ाट नहीं करना, किन्तु उनकी प्रदत्त शिक्षा को विनय से श्रवण करना चाहिये।

९-बारम्बार हाथ, पैर आदि को धोने और आरीसा में देख कर केशादि सम्मारने, या उनको जमा कर रखने से संयमधर्म में दोष लगता है, अतः साधु साध्वियों को अकारण हाथ पैरादि नहीं धोना चाहिये, अशुची की बात अलग है।

१०-प्रतिक्रमण, सज्झाय, पड़िलेहण, स्थंडिलादि, गोचरी पानी लेने को जाते समय मार्ग में गमन करते हुए बातें नहीं करना, किन्तु इन क्रियाओं में मौन और जयणा रखना चाहिये-जिससे अविधि (असंयम) न हो।

११-आहार पानी वापरने के पात्रों को जल से साफ धो कर और वस्त्रखण्ड से अच्छी तरह पूंछ कर झोली में लपेट कर रखना, परन्तु उघाड़े नहीं रखना चाहिये और उनको बार बार संभालते रहना चाहिये।

१२-जिस जमीन में आलास, पड़पड़ा, अधिक ढाल और फाट न हो, जहाँ किसीको एतराज या अप्रीति न हो और जहाँ पानी पडते ही सूख जाय किन्तु डाबड़ के न भरे रहें। स्थण्डिल जाने या प्रश्रवणादि परठने के लिये ऐसी शुद्ध नीलोत्री रहित भूमि वापरना चाहिये।

इस प्रकार जो साधु साध्वी उक्त नियमों के साथ अपना संयमधर्म पालन नहीं करते, वे दोषी हैं और वे दोष के फल स्वरूप आसुरी (किल्बिषिक) देवगति का बन्धन करते हैं।

(अ) और (संजमो) सतरे प्रकार का संयम (अ) तथा (खंति) क्षमा (च) और (बंभचेरं) ब्रह्मचर्य (पिओ) प्रिय है (ते) वे पुरुष (पच्छा वि) अन्तिम अवस्था में भी (पयाया) संयम-मार्ग में विचरते हुए (अमर-भवणाइं) देवविमानों को (खिप्पं) जल्दी से (गच्छंति) पाते हैं ॥२८॥

—आखिरी (वृद्ध) अवस्था में भी जिन पुरुषों को तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है, वे संयममार्ग में वरतते हुए देवविमानों को अवश्य प्राप्त करते हैं। मतलब यह कि वृद्धावस्था में भी दीक्षा लेकर, उसको अच्छी रीति से पालन करनेवाला पुरुष देवगति में जरूर जाता है।

इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मद्दिट्ठि सया जए।
दुल्लहं लभित्तु सामण्णं, कम्मुणा न विराहिज्जासि त्ति बेमि॥२९॥

शब्दार्थ—(सया) निरन्तर (जए) जयणा रखते हुए (सम्मद्दिट्ठि) सम्यग्दृष्टि पुरुष (दुल्लहं) कठिनता से मिलनेवाले (सामण्णं) चारित्र को (लभित्तु) पा करके (इच्चेयं) इस प्रकार चौथे अध्ययन में कही गई (छज्जीवणियं) षट्कायिक जीवों की (कम्मुणा) मन, वचन, काय इन तीन योग संबन्धी अशुभ क्रिया से (न विराहिज्जासि) विराधना नहीं करे (त्ति) ऐसा (बेमि) मैं अपनी बुद्धि से नहीं, किन्तु तीर्थङ्कर आदि के उपदेश से कहता हूं॥ २९॥

—हमेशां जयणा से वरतनेवाले सम्यग्दृष्टि पुरुष अत्यन्त दुर्लभ चारित्र रत्न को पाकर चौथे अध्ययन में बतलाई हुई षड्जीवनिकाय संबन्धी जयणा की मन, वचन, काया से विराधना नहीं करे। आशय यह है कि-साधु अथवा साध्वी चौथे अध्ययन में कहे अनुसार पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इन षड्जीवनिकाय की जयणा खुद रक्खे, दूसरों के पास जयणा रखावे और जयणा रखनेवालों को मन, वचन, काय, इन तीन योगों से अच्छा समझे, लेकिन षड्जीवनिकाय की किसी प्रकार से विराधना नहीं करे।

आचार्य श्रीशय्यंभवस्वामी फरमाते हैं कि हे मनक ! षड्जीवनिकाय का स्वरूप और उसकी जयणा रखने का उपदेश जैसा भगवान् श्रीमहावीरस्वामीने सुधर्मस्वामी को और सुधर्मस्वामीने अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को कहा, उसी प्रकार मैंने तुझको कहा है। इमिति।